सत्रहवाँ अध्याय
स्वप्न में साक्षात्कार

समुद्र-स्नान से सब तीर्थों एवं पवित्र नदियों मे स्नान करने का पुण्य प्राप्त होता है। इसी प्रकार लोगों में यह धार्मिक भावना है कि सत्पुरूष के समागम से अपने धर्म के सभी पवित्र ग्रन्थों के अध्ययन का पुण्य लाभ होता है। फिर भी श्री साई महाराज जैसे अवतारी सत्पुरूष अपनी श्रेष्ठता को स्वीकार न करते हुए, भक्तों से नये-नये पवित्र धर्म ग्रन्थो का अध्ययन करने का आग्रह करते थे। शिरडी में भक्त-अपनी रूचि का धर्म-ग्रन्थ श्री बाबा के पास ले आता था और वह उनके कर-कमलों के स्पर्श से पुनीत हुए उस पवित्र धार्मिक ग्रन्थ को नित्य की पाठ पूजा के लिए घर ले जाया करता था। श्री साई का आशीर्वाद प्राप्त होते ही, भक्तों के हृदयों में स्वत: दिव्य स्फुर्ती का संचार होता था और ग्रंथो के कठिन-से-कठिन वचन भी सरलता से बुद्धि गम्य होते थे। श्री बाबा के कर स्पर्श से पुनीत ग्रन्थों द्वारा भक्तों को श्री बाबा के प्रत्यक्ष सहवास का लाभ प्राप्त होता था। एक बार काका महाजनी ने 'एकनाथी भागवत' नामक ग्रन्थ लाकर श्री बाबा के हाथों में रख दिया। श्री बाबा ने ग्रन्थ के पृष्ठो को उलटपुलट कर देखा और इस पर कुछ संस्कार डाल दिए। फिर उन्होंने वह ग्रन्थ स्वयं अपने हाथों से शामा को देकर उसे पढने की आज्ञा दी। शामा ने ग्रन्थ स्वीकार करने में आनाकानी की। तब श्री बाबा ने कहा- ''इस क्षण यह ग्रन्थ काकासाहेब को देना मैं उचित नही समझता। यह अपने पास ही रखे।'' इसके पश्चात जब काकासाहेब ने पुन: ग्रन्थ प्राप्त करने के लिए प्रयत्न किया तो श्री बाबा ने ग्रन्थ उन्हें लौटा कर आशीर्वाद देते हुए कहा-''अब यह भागवत ग्रन्थ भली-भाँति यत्नपूर्वक रखो और इसका नित्य पारायण करो। तुम्हारा उद्धार होगा।''

एक बार एक रामदासी शिरडी आया और श्री बाबा के सम्मुख उसने 'अध्यात्म-रामायण' तथा 'श्रीविष्णुसहस्त्रानाम' का पारायण करना आरम्भ किया। बहुत दिनों तक उसका यह क्रम चलता रहा। एक दिन सहसा श्री बाबा को न जाने क्या धुन सवार हुई कि उन्होंने रामदासी बुवा को अपने निकट बुलाया और कहा-''अरे, मेरे पेट में नित्य पीडा रहती है। पाचन क्रिया भी दूषित है। तुम बाजार जाओ और सोनामुखी ले आओ।'' श्री बाबा की आज्ञानुसार अपनी पोथियो को समेट कर रामदासी बाजार की ओर चल पडा। श्री बाबा ने तुरन्त ही उसकी पुस्तकों के संग्रह में से 'श्रीविष्णुसहस्त्रनाम निकाला और उसे शामा को देते हुए उन्होंने कहा-''देखो शामा, यह पुस्तक अत्यन्त मूल्यवान तथा उपयोगी है। एक बार मेरा हृदय धडकने लगा और मेरे प्राण व्याकुल हो उठे। उन कठिन क्षणों में मैंने यही ग्रन्थ हृदय से लगा लिया और मुझे अत्यधिक लाभ हुआ , मानो प्रत्यक्ष परमेश्वर का ही मुझे दर्शन हुआ हो। इस ग्रन्थ की महत्ता कुछ ऐसी ही है। तुम्हारे जैसे भक्त को इस ग्रन्थ के परिशीलन से बहुत लाभ होगा। नित्य एक श्लोक पढने का भी तुम प्रयत्न करोगे तो भी तुम्हारा उद्देश्य सफल होगा।''

शामा ने बहुत कहा कि''पुस्तक रामदास की है। वह नाहक मुझ से क्रुद्ध होगा और पुस्तक की भाषा संस्कृत है। इसलिए यह मेरे लिए सर्वथा अनुपयुक्त सी है,'' पर श्री बाबा ने उसकी एक बात भी न मानी। रामदासी के लौटने पर नारद मुनि की भाँति अण्णासाहेब चिंचणीकर ने उसमें और शामा में झगडे की नीव डाली। रामदासी के क्रोध की सीमा न रही और वह शामा को बुरा-भला कहने लगा। रामदासी के मूँह से निकले हुए अपशब्द सुनकर श्री साई महाराज शान्तिपूर्वक बोले-''अरे, तुम इतने क्रुद्ध क्यों हो रहे हो? मैने ही वह पुस्तक शामा को दी थी। शामा ने कोई अपराध नही किया। फिर शामा अपना ही तो बच्चा है। उसने पुस्तक पढी तो क्या हुआ? तुम्हारे जैसे रामदास स्वामी के सम्प्रदाय में पले हुए मनुष्य को यह भी ज्ञात नही कि विनम्र और मृदु

भाषा में कैसे बोलना चाहिए? जब तुम इस छोटे से ग्रन्थ का मोह नही त्याग सकते तो तुम समता का महान् तत्त्व कैसे ग्रहण कर सकोगे? एक ही क्या, ऐसे हजारो ग्रन्थ तुम्हें मिल सकते है। परन्तु यदि किसी मनुष्य का मन टूट जाता है तो उसे पुन: जोडने में कठिनाई होती है। शांत होकर विचार करो, ताकि तुम्हें यह ज्ञात हो जाय कि तुम्हारी यह चेष्टा कितनी मूर्खतापूर्ण थी।''

श्री साई के इस उपदेश का रामदास बुवा पर गहरा प्रभाव पडा। उसने श्री बाबा से क्षमा-याचना की और शामा से अपने ग्रन्थ के बदले 'पंचरत्न गीता' प्राप्त कर उसका अध्ययन करना आरम्भ किया। संस्कृत का लेखमात्र ज्ञान न होते हुए भी शामा 'श्रीविष्णुसहस्रनाम' बिना रोक-टोक शुद्ध रूप से पढने लगा और कुछ दिनो बाद उसने प्रो. नारके के समक्ष ग्रन्थ के कुछ संस्कृत वाक्यों का सुबोध अर्थ भी स्पष्ट कर दिया। यह सब श्री बाबा की कृपा-दृष्टि का ही तो फल था।

ब्रम्ह-विद्या का अध्ययन करने वाले किसी भी व्यक्ति के प्रति श्री साई विशेष आदर तथा स्नेह व्यक्त करते थे। बापूसाहब जोगके नाम पूना से पुस्तकों का एक पार्सल आया था। बापूसाहब ने पार्सल श्री बाबा के सामने रख दिया। एक ग्रन्थ के ऊपर लिपटा हुआ कागज फाडते समय भूल से वह ग्रन्थ श्री बाबा के चरणों पर गिर गया। यह देखकर कि वह लोकमान्य तिलक द्वारा लिखित 'गीता-रहस्य' है श्री बाबा ने अत्यन्त श्रद्धा के साथ वह ग्रन्थ उठाया। थोडी देर सरसरी तौर से उस पुस्तक को देखा और जेब से चाँदी का एक रूपया निकालकर पुस्तक पर रख कर उसे लौटाते हुए जोग से कहा- ''बहुत ही उत्तम ग्रन्थ है । इसको पूरा पढो। तुम्हे अवश्य लाभ होगा।''

किसी व्यक्ति की सुयोग्यता का ठीक-ठीक अनुमान लगाने के पश्चात् ही श्री बाबा उससे किसी ग्रंथ का मनन अथवा अध्ययन करने के लिए कहते थे। उद्भट विद्वान पंडित भी श्री बाबा के सामने नम्रता धारण करने के लिए बाध्य होते थे। इस प्रसंग में अमरावती के प्रसिद्ध वकील दादासाहब खापर्डे

का उदाहरण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दादासाहब खापर्डे का जन्म एक धनी कुल में हुआ था। वे एक विद्वान सद्गृहस्थ थे। दिल्ली की 'कौन्सिल ऑफ स्टेट' के वे सदस्य थे। दादासाहब का संस्कृत ग्रंथो का अध्ययन भी बडा गहरा था। वेदान्त का गम्भीर अध्ययन करने वाले इस व्यक्ति का शिरडी में श्री साई महाराज के समक्ष हाथ जोडकर विनम्र भाव से खडे रहना जिन महाभागो ने देखा है, उन्हें श्री साई की योग्यता का कुछ अनुभव हो सकेगा। श्री साई महाराज एक ऐसे सत्पुरूष थे। जिन्हें आत्म-साक्षात्कार हो चुका था और पूर्ण ब्रम्ह में उनकी स्थिति थी। इसलिए खापर्डे जैसे माने हुए विद्वान भी उनके चरणों में झुकते थे और उनसे अपने मन की शंकाओ का निराकरण करा लेते थे।

सात्त्विक वृत्ति रखने वाली दादासाहब की धर्मनिष्ठ पत्नी पर श्री बाबा का विशेष स्नेह रहा। उसके भेजे हुए प्रसाद पर श्री साई एक क्षुधार्त का भांति टूट पडते थे। एक दिन शामा ने श्री बाबा से स्पष्ट पूछा-''गरीब भक्त द्वारा अर्पण किया हुआ प्रसाद तो आप दूर रख देते है; पर श्रीमती खापर्डे की नैवेद्य की थाली तो आप झपट लेते है। यह पक्षपात क्यों?''

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री साई ने कहा-''अरे, इस अन्न की महत्ता कितनी अधिक है। इसकी तुम कल्पना भी नही कर सकते। पिछले जन्म में यह स्त्री एक धनी व्यापारी की प्रचुर मात्रा में दूध देने वाली गौ थी। इसके पश्चात् इसने एक माली के घर जन्म लिया। फिर एक क्षत्रिय कुल में जन्म लेकर एक सम्पन्न व्यापारी के साथ विवाह किया और अब इस जन्म में ब्राम्हण-कुल में इसका जन्म हुआ है। पूर्व जन्मों की इतनी लम्बी कालावधी के पश्चात् अब मै इसे देख रहा हूँ। इसके लाये हुए अन्न पर यदि मै टूट पडूँ तो क्या आश्चर्य है? यह समुचित उत्तर देकर श्री बाबा ने श्रीमती खापर्डे और शामा को प्रसाद के रूप में कुछ फल दे दिये। श्री बाबा की बात सुनकर श्रीमती खापर्डे को भी बडा आनंद हुआ और शुद्ध पवित्र भावना से वह श्री बाबा की

सेवा करती हुई वही बैठी रही।''

श्रीमती खापर्डे श्री बाबा के चरणो में लोट रही थी। धीरे-धीरे दोनो की बाते भी हो रही थी। वार्तालाप बीच में श्री साई भी श्रीमती खापर्डे का हाथ दबा रहे थे। निकट बैठे हुए शामा को यह दृश्य देख कर हँसी आई और उसने कहा-''शिष्य गुरू की सेवा करता है; परंतु आज तो मै देख रहा हुँ कि गुरू भी शिष्य सेवामें व्यस्त है।''

श्री बाबा ने शामा के शब्दों की ओर तनिक भी ध्यान न देते हुए श्रीमती खापर्डे के कानों में धीरे से 'राजाराम, राजाराम' शब्दों का उच्चारण किया और उसे अपने निकट बुलाकर कहा-''तुमने नित्य इतना भजन भी किया तो तुम्हें सद्गति प्राप्त होगी और तुम्हारा जन्म-जन्मान्तरों लिए कल्याण होगा।''

सामान्य मनुष्य श्री बाबा के इस आचरण का अर्थ नही समझ सकता। सिद्ध पुरूष भक्तों को कल्याण का वही मार्ग दिखलाते है, जो उनके अनुकूल है। यह एक प्रकार का ''शक्तिपाद्'' है। इस आचरण द्वारा वे अपने शरीर में स्थित दिव्य शक्ति का भक्त की देह में प्रवेश कराते है और उन्हें ऊँचे आध्यत्मिक स्तर पर ले जाते हुए मन की एकाग्रता प्राप्त करने का उपाय बताकर असभ्य ज्ञान प्राप्त करा देते है। गुरू और शिष्य के बीच छोटा-बडा होने का भेद-भाव दूर हो गया, पवित्र भक्ति तथा प्रेमसे उनमें एकरूपता स्थापित हो गई तो उनमें विद्यमान स्त्री-पुरूष का भेद सहज ही नष्ट हो जाता है। सभी प्राणियों में वास करने वाला आत्मा एक ही महान शक्ति का छोटा-सा अणु है, यह महान तत्त्व उनके अंत:करण में धुल जाता है और अगम्य, अगोचर विश्वकर्ता की अगाध शक्ति का उन्हें ज्ञान प्राप्त होता है।

दूर रहने वाले भक्त को भी अपनी ओर खींचकर लाने की श्री साई की अतर्क्य शक्ति सचमुच ही मतिमूढ करने वाली है। बम्बई में नौकरी-पेशा अपनाकर समय व्यतीत करने वाले लाला लक्ष्मीचन्द को स्वप्न में एक दिन

एक फकीर दिखाई दिया। स्वप्न में प्रकट हुए फकीर को उन्होंने पहले कभी न देखा था। इसलिये लाला जी असमंजस में पड गये। एक दिन वे अपने एक मित्र के घर दासगणूजी का किर्तन सुनन गये। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त तुकाराम महाराज के सम्बन्ध में कथा चल रही थी। अपनी पद्धति के अनुसार दासगणूजी ने श्री साई महाराज का चित्र अपने सम्मुख रखा हुआ था। लक्ष्मीचंद का ध्यान चित्र की ओर गया तो उसे भान हुआ कि स्वप्न में प्रकट हुये फकीर श्री साई महाराज ही थे। अत: मार्ग व्यय के लिए भाई से पन्द्रह रूपये उधार माँगकर लक्ष्मीचंद एक मित्र को साथ लेकर शिरडी पहूँचे। रेल से यात्रा करते समय दोनों मित्र भोजन करते रहे। स्टेशन पर पहूँचते ही शिरडी से लौटे हुए कुछ मुसलमान फकीरों से लक्ष्मीचंद ने श्री बाबा के सम्बन्ध में पूछताछ की। उन राहगीरों ने श्री साई की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। अब तो लालाजी श्री साई के दर्शनों के लिए बहुत ही उतावले हो गये। उन्होंने मन में सोचा कि श्री बाबा को भेंट स्वरूप देने के लिए कुछ अमरूद खरीदकर ले जाना अच्छा होगा। परंतु ढूँढने पर भी उन्हें अमरूद न मिले। लालाजी ने उनका विचार ही त्याग दिया। जब वे ताँगे से शिरडी गाँव में प्रवेश कर रहे थे, तभी एक वृद्धा स्त्री सिर पर टोकरी लिए दौडती हुई आई। उसकी टोकरी में अमरूद ही देख कर लालाजी को महान आश्चर्य हुआ। उन्होंने कुछ फल खरीद लिए। फल बेचने वाली ने बचे हुए सारे फल भी श्री बाबा के प्रति अर्पण करने का आग्रह किया। उस भोली-भाली स्त्री का श्री बाबा के प्रति यह भाव देखकर लाला लक्ष्मीचंद दंग रह गये और भी बाबा की लीला पर वे विस्मय-विमुग्ध रह गये। द्वारकामाई में श्रीसाई का दर्शन होने के पश्चात लालाजी को अपने जीवन की सार्थकता का पूर्ण अनुभव हुआ और वे हर्ष -विभोर हो उठे। श्री साई महाराज ही उन्हें स्वप्न में दर्शन देकर अपने चरणों तक खींच लाये थे। लक्ष्मीचंद ने जब श्री बाबा के चरणों मे फल-फूल चढाये तो श्री साई ने उनकी ओर घूरकर देखते हुए अन्य उपस्थित भक्तों से कहा-''लोग भी कितने चालाक होते है। गाडी

में भजन करते है और साथ ही साथ आने जाने वाले लोगों से पूछताछ भी करते है। दुसरो से पूछने की क्या आवश्यकता?प्रत्यक्ष यहाँ आ जायें और अपना समाधान कर लें। अपना स्वप्न सच्चा है कि नही, इसकी जाँच-पडताल कर लें। मारवाडी से रूपये उधार लेकर स्वप्न में देखे हुए फकीर का दर्शन करना केवल मूर्खतापूर्ण नही है क्या? पता नही, अब भी उसके अन्त:करण की इच्छा पूर्ण हुई है या नही।''

श्री बाबा के इन उद्‌गारों से लालाजी को उनकी दिव्य अन्तर्ज्ञान की शक्ति तथा मन की विशालता का अनुभव न हुआ हो तो सचमुच ही आश्चर्य की बात कही जा सकती है ! लक्ष्मीचंद के मन में फिर भी कुछ शंका बाकी रह गई थी, इसलिए ही श्री बाबा ने और दो चमत्कार कर दिखाये। एक भक्त नैवेद्य-स्वरूप घी का बनाया हुआ हलुआ लाया था। लाला जी को हलुआ खाने की तीव्र इच्छा हुई। पर, श्री बाबा के समक्ष वे अपनी इच्छा प्रदर्शित करने का साहस न कर सके। वे चुप बैठे रहे। दुसरे दिन जब बापूसाहब जोग ने श्री बाबा से पुछा कि 'प्रसाद के लिए कौन-सा पदार्थ बनवा कर लायें। तो श्री बाबा ने लक्ष्मीचंद की ओर देखते हुए कहा', ''आज अच्छा खासा घी का हलुआ बना कर लाओ ओर प्रसाद के तौर पर इस लक्ष्मीचंद को भी खूब पेट भर कर खिला दो।''

उसी दिन श्री बाबा का स्वास्थ कुछ अच्छा नही था। वे कफ के प्रकोप से पीड़ित थे। लक्ष्मीचंद के मन में यह विचार आया कि श्री बाबा को किसी की नजर लग गई है। यह विचार उन्होंने अपने मन में गुप्त ही रखा था। द्वारकामाई में पधारने पर भक्तों की ओर दृष्टिपात करते हुए श्री बाबा ने कहा- ''कुछ लोगों की दृष्टि बहुत बुरी होती है। कुछ भक्तों को तो यह डर है कि कल से मै किसी की कृदृष्टि का शिकार हुआ हूँ। सम्भव है, इसी कारण मेरे स्वास्थ से मै किसी की कुदृष्टि का शिकार हुआ हूँ। सम्भव है, इसी कारण मेरे स्वास्थ में कुछ बिगाड उत्पन्न हुआ है।''

इस प्रकार की लीलाएँ बार-बार अनुभव कर लालाजी को पूर्ण विश्वास हो गया कि श्री साई साक्षात परमेश्वर है और वे उनके परम भक्त बन गये। लालाजी को जैसे ही ज्ञात होता कि श्री साई बाबा का कोई भक्त शिरडी जा रहा है तो वे उसके साथ फल-फूल, दक्षिणा आदि भेजने में कभी नही चुकते थे।

शिरडी में भक्त लोगों का आना-जाना जैसे-जैसे बढता गया, वैसे-वैसे ही श्री बाबा के सच्चे श्रद्धालु भक्तों की कठिनाइयाँ भी उसी अनुपात में बढती गई। बुरहानपुर की एक स्त्री स्वप्न में श्री बाबा का साक्षात्कार पाकर शिरडी पहूँची थी। स्वप्न में प्रगट होकर श्री साई ने उस स्त्री से खिचडी की याचना की थी। अपने पति को तैयार कर उसने उनके हाथ श्री बाबा के प्रति अर्पण करने के लिए नित्य-प्रति खिच डी का नैवेद्य भेजना आरम्भ किया। परन्तु भक्तों की अपार भीड के कारण नैवेद्य की थाली कभी भी बाबा तक न पहूँच सकी। चौदह दिन तक उसने बराबर प्रतीक्षा की। आखिर वह अपने मन को नियंत्रण में न रख सकी। आत्मसंयम की भी तो कोई सीमा होती है। पन्द्रहवे दिन खिचडी से भरा हुआ थाल लेकर वह स्वयं ही द्वारकामाई में गई। श्री बाबा कुछ विशिष्ट भक्तों के साथ परदे के भीतर भोजन कर रहे थे। किसी बात का विचार न करते हुए उस स्त्री ने बलात् परदा हटा दिया और श्री बाबा के सम्मुख खिचडी का थाल रखदिया। सब लोग आश्चर्यचकित हो देखते रहे, क्योंकि उस समय भोजन आरम्भ करने से पूर्व श्री बाबा ने खिचडी खाने की ही इच्छा व्यक्त की थी। बुरहानपूर की स्त्री के लाये हुए थाल में से पेट भर खिचडी खाने के पश्चात् श्री बाबा प्रसन्न दिखाई दिये। परदा हटाने पर श्री बाबा के मन में रोष नही था। मानो भक्त द्वारा प्रेम से लाई हुई वस्तु की वे आतुरता से राह ही देख रहे थे।

श्री साई महाराज किस समय क्या चमत्कार कर दिखायेंगे, इसकी किसी को भी पूर्व कल्पना या सूचना नही होती थी। जान-बूझ कर कोई भी

प्रसंग उपस्थित न करते हुए वे सहज स्वभाव से ऐसी कुछ अलौकिक लीला रचते थे, कि देखने वाले भक्त दाँतो तले उँगली दबा कर रह जाते थे। श्री बाबा के एक परम भक्त, मेघा ने एक बार मकर संक्रान्ति के दिन सोचा कि श्री बाबा को गंगा-स्नान कराया जाय। पहले तो श्री बाबा ने सुनी-अनसुनी कर दी। पर मेघा ने एक बालक की भाँति हठ किया। तब श्री बाबा को विवश होकर उसकी बात माननी ही पडी। स्नान-संध्या के बाद पवित्र वस्त्र धारण कर वह आठ कोस चलकर पवित्र गोदावरी के जल से घडा भर कर ले आया और श्री बाबा के अभिषेक की तैयारी की। श्री बाबा चौकी पर आकर बैठ गये और मेघा का हाथ पकडते हुए उन्होंने कहा-''मेघा। शरीर के सारे अवयवों में सिर ही सबसे अधिक पवित्र और महत्वशाली है। इसलिए इसे ही शीतल जल से भिगो कर अपना उद्देश्य पूर्ण करो। मेरे सारे शरीर पर जल न डालो।''

''ठीक है, बाबा! आप कुछ चिन्ता न करे।'' यह कहकर ''शंभो, हर-हर महादेव!'' की गर्जना करते हुए मेघा ने जल से भरा हुआ कलश श्री बाबा के सिर तथा सर्वांग पर पूर्णतया रिक्त कर दिया। पर रिक्त कलश नीचे रखते हुए मेघा ने जब श्री बाबा की ओर देखा तो उनका केवल सिर ही जल से भीगा था; शरीर के अन्य किसी अंग पर कही भी जल की एक बूँद भी दिखाई न दी। श्री बाबा का सारा शरीर बिल्कुल सूखा था। मेघा यह देखकर मन में बडा लज्जित हुआ। श्री बाबा प्रसन्न मुद्रा में बैठे थे। वे जानते थे कि मेघा का यह दृढ विश्वास था कि श्री साई शिवजी के अवतार है। भक्त के मन में दृढ इच्छा हो तो श्री साई भी उसे सहज भाव से उसी दिशा में प्रेरित करते थे। स्वप्न में दर्शन देकर भक्तों को सही मार्ग पर लाने के लिए श्री साई एक विलक्षण उपाय का अवलम्बन लेते थे।

'मद्रासी भजन-मंडली' नाम से एक मद्रासी कुटुम्ब मार्ग में भजन-कीर्तन करते हुए काशी-यात्रा पर जा रहा था। मार्ग में श्री साई महाराज की कीर्ति सुनकर वे लोग कुछ समय शिरडी में ही वास करने के विचार से वहाँ

रूक गए। श्री बाबा के समक्ष प्रतिदिन भजनों का कार्यक्रम होने लगा। भजनी-मंडली के नेता का ध्यान तो केवल रूपये-पैसे की ओर ही था। उसका मुख्य उद्देश्य भजनों का कार्यक्रम रखकर श्री बाबा से कुछ आर्थिक लाभ उठाना ही था। पर उस की स्त्री तो बहुत शालीन, श्रद्धालु तथा आचार-विचारों वाली थी। अपनी मधुर आवाज में जब वह प्रभु रामचद्रजी का गुणगान करती थी तो अपनी सुध-बुध खोकर तल्लीन हो जाया करती थी। श्री बाबा के प्रति उसकी श्रद्धा नित्य बढती गई और एक दिन चमत्कार यह हुआ कि दोपहर के समय जब वह तन्मय होकर भजन गा रही थी तो श्री बाबा के स्थान पर उसे प्रभु रामचन्द्र जी की मूर्ति दिखाई दी। उसे अपनी आँखो पर विश्वास न हुआ। उसने पति से इस घटना का उल्लेख किया। पर, उसके पति ने उसकी खूब हँसी उडाई और यह कह कर कि 'तू मन की दुर्बलता से दृष्टि भ्रम होने के कारण व्यर्थ की बातें कर रही है,' उसकी बहुत निर्भत्सना की। वह साध्वी स्त्री वाद-विवाद में न पडकर मौन बैठी रही। श्री बाबा उसे पुन:पुन:साक्षात्कार देते रहे। इच्छा हुई तो श्री बाबा किसी को सौ-पचास रूपये उठा कर दे देते थे। पर भजनों का सुन्दर कार्यक्रम करने के पश्चात् भी मद्रासियों को विशेष धन-प्राप्ति न हूई। एक रात्रि में भजन-मंडली के मुखिया ने एक स्वप्न देखा। उसने देखा कि चोरी के अभियोग में पुलिस ने उसे पकडकर कारागृह में बन्द कर दिया है। कारागृह के बाहर श्री साई महाराज को खडे देख कर मद्रासी ने पूछा-''बाबा, आपकी कीर्ति सुनकर हम यहाँ आये, फिर हम पर य संकट कैसे आगया? आप यहाँ उपस्थित है। परन्तु मुक्त कराने का जरा भी प्रयन्त नहीं कर रहे है।''

श्री साई - तुम्हें अपने कर्मो का फल भोगना ही पडेगा।

मद्रासी - मैने ऐसा कोई कृत्य नही किया, जिससे मुझ पर यह संकट आ जाता।

श्री साई - पूर्व जन्म में कोई पाप किया होगा।

मद्रासी - पूर्व जन्म का मुझे कोई स्मरण नहीं है। परन्तु मेरे हाथो से कोई पाप कर्म हुआ भी होगा तो इस समय आप जैसे महान संत की शरण में आने से मेरे सारे पाप जल कर भस्म हो जाने चाहिएँ।

श्री साई - क्या तुम्हारा मुझ में पूर्ण विश्वास है ?

मद्रासी - हाँ, अवश्य है।

इतना संभाषण होने के उपरान्त श्री साई की आज्ञानुसार मद्रासी ने अपनी आँखे बन्द कर ली। नेत्र मूँदते ही मेघो की भयंकर गडगडाहट सुनाई दी। आँखे खोलने पर मद्रासी ने देखा कि उसके हाथों की लौह श्रृंखलाएँ टूट कर धरती पर गिर पडी है। वह तो मुक्त हो गया; पर देख-रेख करने वाला सिपाही समीप ही मृतावस्था में पडा है। श्री बाबा ने उसे बहुत भयभीत किया। अन्त में वह मद्रासी अनन्य भाव से श्री बाबा की शरण में आ गया। स्वप्न में ही श्री साईने उसे उचित उपदेश किया। उसे उसके कुल में परम्परासे होती आई पूजा-विधि तथा अन्य संस्कारों का स्मरण दिलाया। तदनन्तर श्री बाबा उसे अपने साथ आने के लिए कहकर भजन-संप्रदाय के आद्यगुरू श्री रामदास स्वामी का प्रत्यक्ष दर्शन कराया और फिर वे अदृश्य हो गए। स्वप्न से जागृतावस्था में आकर मद्रासी सोच-विचार में डूब गया। श्री बाबा के साथ हुए प्रश्नोंत्तरों का पूर्णतया उसे स्मरण हुआ। तत्काल ही उसके मन पर गहरा प्रभाव पडा। अकारण ही अपनी पत्नी पर दोषारोपन करने का उसे पश्चाताप हुआ और निर्मल श्रद्धा के साथ वह श्री बाबा की शरण में गया। सदैव उसकी ओर उपेक्षा की भावना से देखने वाली श्री साई ने उस दिन मद्रासियों में मेवा-मिठाई लूटा दी और भजन-मंडली के मुखिया को अपने पास से दो रूपये देकर आशीर्वाद देते हूए कहा-''भजनों के कार्यक्रम करते रहने से तुम्हें पर्याप्त धन की प्राप्ति होगी।'' इस घटना का विस्तारपूर्वक उल्लेख करने का कारण यही है कि भक्तों को साक्षात्कार देकर उन्हें सही दिशा दिखा देने का श्री साई

का यह एक मार्ग होता था। समाधिके पश्चात भी भक्तों के स्वप्नों में प्रकट होकर श्री साई इस प्रकार के उपदेश देते रहते हैं।

बम्बई के एक उपनगर में रहने वाले रघुनाथ तेंडुलकर को भी श्री साई महाराज के इसी प्रकार स्वप्न में उपदेश दिया था। रघुनाथ राव बम्बई में एक यूरापियन कंपनी में नौकरी करते थे। अधिक आयु होने के कारण सुचारू रूप से कार्य करना उनके लिए असंभव-सा हो गया था और इसलिये अवकाश ग्रहण कर वे घर बैठ गए। उस समय उन्हें कोई डेढ सौ रूपये वेतन मिलता था। पेन्शन के उन्हें आधे यानी पचहत्तर रूपये मिल सकते थे। इतने कम वेतन में गृहस्थी का भार आधे यानी पचहत्तर रूपये मिल सकते थे। इतने कम वेतन में गृहस्थी का भार कैसे उठाया जाय, इस चिन्ता में जब रघुनाथराव पडे हुए थे, तो एक रात्रि में श्री साई ने उन्हें स्वप्न में दर्शन दिये और उनसे प्रश्न किया कि सौ रूपये पेन्शन मिलने से तो वे संतुष्ट हो जायेंगे या नही? रघुनाथ राव की श्री साई में पूर्ण श्रद्धा थी। उन्होंने उत्तर दिया कि सौ रूपये उनकी आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त है। आगे रघूनाथ राव के एक उच्च अधिकारी के मन में दया उत्पन्न हुई और उसने उन्हें बहुत वर्षो तक ईमानदारी से कार्य कर पुरस्कार-स्वरूप प्रति मास एक सौ दस रूपये पेन्शन देना स्वीकार किया। इसे केवल संयोग की बात न कहकर श्री बाबा के मन में अपने भक्त के प्रति चिन्ता उत्पन्न होने का एक दृष्टान्त ही कहना उचित होगा। उन्होंने ही भक्त के दु:ख से दु:खी होकर रघुनाथराव के उच्चाधिकारी के मन में प्रेरणा उत्पन्न की थी, यह स्वीकार करना ही युक्तियुक्त होगा।

इसी रघुनाथराव के पुत्र बाबा तेंडुलकर को एक ज्योतिषी ने बताया था कि ग्रह-दशा अनुकूल न होने से उसका परीक्षा में असफल होना निश्चित-सा है। ज्योतिषी की भविष्यवाणी सुनकर वह पूर्णतया निराश हो गया और उसने डॉक्टरी की परीक्षा में बैठने का विचार ही त्याग दिया। इस लडकें की माँ श्री बाबा की परम भक्त थी। शिरडी जाकर उसने श्री बाबा को सारा

वृत्तान्त सुनाया। तब श्री बाबा बोले-''उस लडके से कहो, केवल मुझमें हि विश्वास रखे। ज्योतिष-शास्त्र और उस मूर्ख ज्योतिषी की भविष्यवाणी में यत्किंचित भी विश्वास न रखते हूए परीक्षा की तैयारी में लगा रहे। परीक्षा में कैसे असफल रहेगा, यह मैं स्वयं देख लुंगा।''

श्री बाबा का यह उत्साहवर्धक संदशे मिलते ही बाबा तेंडुलकर थोडा बहुत अभ्यास कर परीक्षा के लिए उपस्थित हुआ। लिखित परीक्षा में संतोषजनक उत्तर न दे सकने के कारण तेंडुलकर अपने निश्चय पर दृढ नही रह सका और मौखिक परीक्षा में न जाने का संकल्प कर घर लौट आया। तेंडुलकर के परीक्षकोने यह देखकर कि लिखित परीक्षा में उत्तम अंक प्राप्त करने के पश्चात् अकारण ही वह हानि उठाना चाहता है, उसके घर संदेश भिजवा दिया और उसे शेष परीक्षा में भी उपस्थित रहने के लिए बाध्य किया। तेंडुलकर सचमुच ही उस वर्ष परीक्षा में पूर्णतया उत्तीर्ण हुआ। ज्योतिषियों की भविष्यवाणी सुनकर अनेक बार दुर्बल मनुष्यों के मन पर सर्वथा विपरीत प्रभाव होता है, इसीलिये श्री साई ने पूर्ण विश्वास के साथ यह कहकर कि वह अवश्य सफलता प्राप्त करेगा, तेंडुलकर को परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित किया और इतने विलक्षण ढंग से अपना कथन सत्य सिद्ध कर दिखाया। धन्य है, श्री साई महाराज।

बीकानेर में नौकरी के लिए निवास करने वाले श्री साई के परम भक्त कप्तान विनायकराव के स्वप्न में भी श्री बाबा एक दिन प्रकट हुए और उससे पूछा-''क्यो, मुझे भूल गये क्या?''

विनायकराव ने तुरन्त ही श्री साई के चरण पकडे और गद्‌गद् अन:करण से उन्होंने कहा-''क्या एक बच्चा अपनी माँ को कभी भूल सकता है?'' तदुपरान्त कप्तान हाटे अपने बगीचे में गये और ताजी 'बालपापडी' (सेम) तोडकर श्री बाबा के प्रति अर्पण करने के लिए वे जैसे ही उद्यत हुए कि तभी उनकी आँख खुल गई। स्वप्न की स्मृति शेष रह गई। विनायकराव की श्री

बाबा मं अविचल श्रद्धा-भक्ति थी और इसीलिए यह प्रसंग वे भूले नही। फिर कुछ महीनों के पश्चात् वे ग्वालियर गये और वहा से शिरडी जानेवाले अपने एक मित्र को उन्होंने मनिऑर्डर द्वारा बारह रूपये भेज दिये और साथ ही संदेश भेजा कि उन रूपयों में दो रूपये श्री बाबा के लिए सीधा-सामग्री तथा बालपापडी (सेम) खरीदने के लिए अवश्य खर्च करें तथा बाकि दस रूपये श्री बाबा को दक्षिणा के रूप में दे दिये जायँ। विनायकराव का मित्र शिरडी पहूँचा और उनकी इच्छानुसार सभी वस्तुएँ खरीद ली। पर अन्त तक कहीं भी बालपापडी (सेम) उनके हाथ न लगी। कोपरगाँव में पहूँचने के पश्चात् ताँगे में बैठते समय एक स्त्री सिर पर सब्जी की टोकरी लिए सामने आयी। टोकरी मं बालपापडी की (सेम) ही देखकर विनायकराव के मित्र ने तुरन्त वे खरीद ली। शिरडी में पहूँचने के बाद विनायकरावकी ओर से उनके मित्र ने सारी सामग्री तथा वे सेम निमोणकर के सुपुर्द कर दी। निमोणकर ने भात-भाजी आदि समस्त भोजन तैयार कर कत्पान विनायकराव का नैवेद्य श्री बाबा के प्रति अर्पण किया। उस दिन श्री बाबा ने अन्य किसी भी पदार्थ को स्पर्श न करते हुए केवल बालपापडी (सेम) ही प्रसन्नता से ग्रहण की। इस घटना का समग्र वृत्तान्त जब कप्तान विनायकराव को मिला तो उनके हर्ष का पारावार न रहा।

किसी भक्त से श्री बाबा को अधिक स्नेह होता था तो वे उसे अपने पास से एक रूपये नित्य पुजा-अर्चना के लिए देते थे। जब विनायकराव हाटे के कानों तर यह बात पहूँची तो श्री बाबा के कर-स्पर्श से पूनीत हुआ एकाध रूपया प्राप्त करने की पवित्र भावना से प्रेरित हो उन्होंने एक चाँदी का रूपया अपने एक मित्र के हाथ श्री बाबा को अर्पण करने के उद्देश्य से भेज दिया।

श्री साई का दर्शन होने का उपरान्त विनायकराव के मित्र ने अपनी दक्षिणा उनके सम्मुख रखी। श्री बाबा ने तुरन्त ही दक्षिणा की रकम जेब में डाल ली। तदनन्तर विनायकरराव के मित्र ने उनका चाँदी का रूपया श्री साई को दिया। श्री बाबा ने चाँदी के रूपये को निहार कर देखा। दो-चार बार

रूपये को उछाला और फिर वे वह रूपया विनायकराव के मित्र के हाथ में रखते हुए कहा-''यह रूपया जिसका है। उसी को लौटा दो। मेरी यह विभूति साथ ले जाओ और उसे मेरा संदेश दो कि 'किसी वस्तु कि मैं तुम से अपेक्षा नही रखता। सदा प्रसन्न रहो, और सन्तोष से जीवन व्यतीत करो। यही मेरा आशीर्वाद है।''

विनायकराव का मित्र श्री साई महारा द्वारा लौटाया हुआ रूपया लेकर घर पहूँचा। परन्तु मन में लोभ उत्पन्न होने के कारण श्री बाबा के दिये हुए रूपये को अपने पास ही रखकर उसके बदले एक -दुसरा रूपया उसने कप्तान विनायकराव को लौटा दिया। उसी रात्रि को उसकी लडकी एकाएक रोग-ग्रस्त हुई, और उसका ज्वर एक सौ डिग्री तक पहूँचा। विनायकराव के मित्र का मन उसे धिक्कारने लगा। उसी रात्रि को वह कप्तान साहब के घर दौडते-दौडते पहूँचा और उनसे क्षमा-याचना करते हुए अपना अपराध स्वीकार किया और श्री बाबा का स्पर्श किया हुआ रूपया उन्हें लौटा दिया। विनायकराव के मित्र को इस घोर अपराध के लिए श्री बाबा ने भी क्षमा किया, क्योंकि उसी रात्रि को उनकी लडकी का ज्वर भी घट गया।

श्री साई महाराज का प्रत्येक आचरण यद्यपि नि:स्वार्थी होता था, तथापि उसमें कोई-न-कोई गूढ अर्थ निहित रहता था। उनकी प्रत्येक लीला का अर्थ समझना आकाश के तारे तोडने के सदृश ही असम्भव-सा होता था। कप्तान हाटे को तो श्री बाबा ने उनका रूपया पूजा के लिए लौट दिया; परन्तु वामन नार्वेकर नामक भक्त को तो झिडकार दिया था। नार्वेकर रूपये के आकार का सुन्दर नक्काशी का काम किया हुआ चाँदी का एक पदक लाये थे। पदक के एक और राम-लक्ष्मण-सीता की मूर्तियाँ उत्कीर्ण थी तो दूसरी ओर श्री हनुमान की प्रतिमा थी। नार्वेकर की प्रबल इच्छा थी कि श्री बाबा उस पदक को अपने कर-स्पर्श से पुनीत कर पूजा के लिए लौटा दे। पर श्री बाबा ने यह उचित नही समझा की पदक नार्वेकर को लौटा दिया जाय। उन्होनें वह

पदक शामा को दे दिया। शामा ने पदक नार्वेकर को देने के प्रार्थना की तो श्री बाबा ने उत्तर दिया कि नार्वेकर दक्षिणा-स्वरूप पच्चीस रूपये दे देंगे तो यह पदक उन्हें लौटा दिया जायेगा। नार्वेकर ने तुरन्त अपने मित्र-वर्ग से पच्चीस रूपये एकत्रित कर श्री बाबा के चरणो में डाल दिये। फिर भी श्री बाबा का मन द्रवित न हुआ। ''इस पदक का मूल्य बहुत अधिक है। नार्वेकर के लिए यह उपयुक्त नही है। तुम इसे अपने पास ही रखो और इसकी नित्य पुजा करो।'' शामा से यह कहकर श्री बाबा ने अपनी ही बात रखी। किसी को भी श्री बाबा से यह पूछने का साहस न हुआ कि उन्होंनें ऐसा बर्ताव क्यों किया? श्री बाबा के इस आचरण का अर्थ कोई भी नही समझ सकता। इसका अर्थ तो वे स्वयं ही जानते थे।

❋ ❋ ❋ ❋ ❋

अठारहवाँ अध्याय
आध्यात्म-प्राप्ति का मार्गदर्शन

श्री साईनाथ महाराज का अंत:करण अत्यंत दयालु था। वे भक्तों को अपना ही बच्चा समझकर उनके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करते थे। भक्तों पर उनका स्नेह पुत्रवात् था। उनकी कृपा-दृष्टि से ही भक्तों के मन के समस्त क्लेश दूर हो जाते थे। हजारों कोस से ब्राम्हण उनके चरणों सें भागते हुए आते थे और पवित्र ग्रंथो का अध्ययन करते थे। श्री साई महाराज ने किसी का अनादर अथवा तिरस्कार नहीं किया। उन्होंने सभी लोगों को योग्य मार्गदर्शन के द्वारा आत्मिक उन्नति के ऊँचे स्तर पर ले जाने का उपनी शक्ति के अनुसार भरसक प्रयत्न किया। हेमाडपंत जैसे कभी भूलकर भी लेखनी हाथ में न उठाने वाले व्यक्ती से 'श्री साई सच्चरित्र' जैसा लोकप्रिय एवं विद्वत्तापूर्ण महान ग्रंथ उन्होंने लिखवा लिया। हेमाडपंत के पूर्व जन्म के पुण्यों के कारण

ही मानों प्रत्येक शब्द लिखते समय श्री साई ने उन्हें प्रेरणा एवं प्रतिभा प्रदान की। ऐसे अनेक लोगों को श्रीसाई महाराज ने दूर-दूर से अपने चरणों में आकृष्ट कर उन्हें आत्मज्ञान का साक्षात्कार करा दिया।

नासिक से कुछ दुर सप्तश्रृंगी के मंदिर के पुजारी काका वैद्य ने किस प्रकार श्री साई के चरणों में शरण ली तथा वे किस ऊँचाई तक पहूँचे, यह एक ध्यान देने योग्य घटना है। काका जी संसार-ताप से इतने त्रस्त हो चुके थे कि उनके मन में वैराग्य की भावना उत्पन्न हो गई और अपने नश्वर शरीर का त्याग करने का विचार भी उनके मन में उठने लगा। एक दिन ऐसी ही अस्थिर मन:स्थिती में उन्होंने मंदिर में जाकर अत्यंत विनम्र भाव से देवी की प्रार्थना की। उसी रात्रि के काकाजी को सप्तश्रृंगी देवी स्वप्न में दिखा दी और उनसे कहा-''तुम बाबा के पास जाओ। वहाँ तुम्हारे मन को शान्ति और संतोष प्राप्त होगा।'' स्वप्न से जागृतावस्था में आने पर काकाजी ने अपने मन में बहूत सोचा की ये 'बाबा' कौन है। पर, प्रश्न का संतोषजनक उत्तर न मिला। उन्होंने सोचा, मेरे आराध्य देव त्र्यंबकेश्वर की स्वप्न में आए 'बाबा' होंगे, और वे नासिक के समीप त्र्यंबकेश्वर के मंदिर में जा पहुँचे। वहाँ अनन्य भाव से लगातार दस दिनों तक उन्होनें कठोर तपश्चर्या की। फिर भी मन को शान्ति न मिली। घर लौटने पर उसी रात्रि में देवी ने स्वप्न में पुन: साक्षात्कार दिया और कहा-''अरे, मैने तो तुमसे बाबाके पास जाने के लिए कहा था। 'बाबा' से मेरा अभिप्राय है। शिरडी के श्री साई समर्थ।''

काकाजी के मन में तब 'बाबा' के रहस्य का पूर्णतया उद्घाटन हुआ और वे शिरडी के लिए उद्यत हुए। जब भक्त का मन अधीर हो उठता है, तो प्रत्यक्ष परमेश्वर भी किसी न किसी रूप में आकर उसके सामने खडा हो जाता है। आश्चर्य की बात कि काकाजी को शिरडी ले जाने के लिए श्री साई महाराज का प्रिय शिष्य शामा स्वयं ही वहाँ आ उपस्थित हुआ। तीस वर्ष पूर्व जब शामा बच्चा था, तब उसकी माँ ने सप्तश्रृंगी देवी की मनौती मानी थी। मृत्यू

के समय उसने शामा को बुला कर इस बात का स्मरण भी कराया था। पर, शामा ने तो सुनी-अनसुनी कर बात को बिल्कुल भूला दिया था। कुछ वर्षो के उपरान्त शिरडी में एक प्रसिद्ध ज्योतिषी आया। शिरडी के लोगों को अचूक भूत-भविष्य बताकर उसने चकित कर दिया था। शामा को उसने इस बात का स्मरण दिलाया कि माँ के आदेशानुसार उसने देवी के सम्मुख किया हुआ संकल्प पूर्ण नही किया है। जब शामा ने श्री बाबा के समक्ष ही पूजा का संकल्प पूर्ण करने का निश्चय प्रकट किया। पर, श्री बाबा सहमत न हुए और उन्होंने शामा को सप्तश्रृंगी देवी के मंदिर में ही जाने की आज्ञा दी। इस प्रकार शामा आकस्मात मंदिर में काकाजी के पास आया। कुछ लोग तो इसे केवल संयोग की बात कहेंगे; परंतु जो लोग श्री साई की लीलाओं से भली-भाँति परिचित है, उनके ध्यान में अवश्य यह बात आयेगी की श्री बाबा ने उद्देश्यपूर्वक ही काकाजी को शिरडी बुलाने के लिए शामा को इतनी दूर भेज दिया था। शामा के मुख से श्री बाबा की लीलाओं का वर्णन सुनकर काकाजी एक पागल की भाँति दौडे हुए शिरडी पहूँचे। श्री साई का दर्शन होते ही मानो कोई अद्‌भुत चमत्कार ही हुआ हो। काकाजी के मन में गहरी बैठी हुई समस्त विपरीत कल्पनाएँ कुहरे की भाँति छँट गई और उन्हें पूर्ण समाधि स्थिति का अनुभव प्राप्त हुआ। श्री बाबा ने काका जी को सम्बोधित कर एक शब्द भी नही कहा। प्रत्युत उन्होंने केवल दृष्टि-निक्षेप से ही काकाजी के हृदय में परिवर्तन कर दिया था। श्री साई का सामर्थ्य इतना अलौकिक था।

जिन व्यक्तियों ने श्री साई को कभी देखा नही था। ऐसे लोगों को भी श्री साई अपनी और आकर्षित कर लेते थे। यह पढ कर कोई भी अचम्भे में पड सकता है या इसे चेले मूँडने का ही एक प्रकार बतायेगा; परंतु श्री साई में चमत्कार उत्पन्न करने की अद्‌भुत शक्ति थी। बंबई में रामलाल नामक एक पंजाबी रहता था। ध्यान या मन में न होते हूए भी एक रात्रि को उसके स्वप्न में एक फकीर प्रकट हुआ और उससे अपने पास आने का आग्रह करने लगा।

स्वप्न में देखा हुआ व्यक्ती अपरिचित था, अत: 'वह कौन है, कहाँ रहता है' आदि प्रश्नों का समाधान ढूँढने का कोई मार्ग रामलाल को दीख नही रही था। एक दिन कार्यवश बाजार में घूमते-घूमते रामलाल को अकस्मात एक दुकान में श्री साईनाथ महाराज का चित्र दिखाई दिया। स्वप्न में देखा हुआ फकीर बिल्कुल यही है, यह निश्चय होने पर उसने दूकानदार से पूछ-ताछ की और श्री साई महाराज का दर्शन करने के उद्देश से वह शिरडी पहूँचा। वहाँ पहूँचते ही उसे दृढ विश्वास हो गया कि स्वप्न में प्रकट होकर उसे शिरडी में खीचंकर लाने वाले श्री साई नाथ ही है। फिर तो उसने अनन्य भाव से श्री साई की भक्ति करना आरंभ किया। रामलाल ने श्री साई का नाम कभी सुना नही था। श्री साई बाबा कौन व्यक्ति है और उनकी क्या शक्ति है, इसकी उसे किंचित-मात्र भी कल्पना न थी। फिर भी श्री साई महाराज ने उसे अपनी ओर क्यों आकृष्ट किया? यह प्रश्न सचमुच ही उलझन में डालने वाला है।

श्री साई के दरबार में विविध प्रकार के लोग सदैव आते थे। इसलिए वहाँ विविध मानवीय प्रवृत्तियों से प्रेरित नये-नये अनुभव नित्य देखने में आते थे। किसी भी धर्म या पंथ से संबंधित मनुष्य जब श्री साई के सामने आता था तो वे उसे देखकर ही यह सही-सही अनुमान लगा लेते थे कि वह इच्छा से उनके पास आया है। और फिर उससे समयोचित ही बर्ताव करते थे। वे किसी से उदारतापूर्वक निर्भय होकर शिरडी में रहने का आग्रह करते थे तो किसी पर अत्यंत क्रोधित होकर उसे भगाने दौडते थै और 'चले जाओ' कहते हुए उसे शिरडी से विदा कर देते थे। लुच्चे-लफंगो तथा पाखंडियों को वे शिरडी में एक क्षण भी नही ठहरने देते थे। छल-कपट द्वारा लोगों से रूपया ऐठने वाले ढोंगी, बैरागी, फकीर आदि तो श्री साई के पास भी नही फटकते थे। फिर भी साई द्वारा उपेक्षित हर एक मनुष्य को ढोंगी या कपटी समझना बडी भारी भूल होगी; क्योंकि श्री साई का उद्देश्य विचित्र होने के कारण उनके आचरण का सही अर्थ समझना भी सामान्य मनुष्य के लिए सरल नही था।

मानस सरोवर की परिक्रमा के उद्देश्य से निकले हुए मद्रासी संन्यासी विजयानंद की कुछ ऐसी ही शोचनीय स्थिती हुई थी। वह बेचारा सद्भाव एवं निरपेक्ष बुद्धि से श्री बाबा के दर्शनों के लिए द्वारकामाई में आया था। उसे देखते ही श्री बाबा क्रूद्ध हुए और चिल्लाकर बोले-''इस निकम्मे संन्यासी को यहाँ से भगा दो। इससे किसी का यत्किंचित भी लाभ न होगा।'' विजयानंद को बडा दु:ख हुआ। पर मन कडाकर वह वहीं बैठा रहा। भक्त लोग श्री बाबा की पूजा-अर्चना करने में तल्लीन थे। श्री बाबा के दरबार के उत्साहजनक वातावरण में विजयानंद ने कुछ दिन तो आनंदपूर्वक व्यतीत किये। बाद में कुछ दिन बीतने पर जब उस अपनी माता के रोग-ग्रस्त होने का संदेश मिला तो वह मानस सरोवर की यात्रा स्थगित कर स्वदेश लौटने की आज्ञा माँगने के लिए श्री साई बाबा के पास द्वारकामाई में घुस गया। श्री बाबा ने उसे तुरंत उत्तर दिया-''अपनी माता से तुझ इतना गहरा स्नेह और ममता है तो यह संन्यासी-वेश ही क्यों धारण किया है? जाओ, शांति से बैठो। यहाँ चोर बहुत है। वे तुम्हारा सर्वस्व हरण कर लेंगे। संसार में प्रत्येक वस्तु नश्वर है। संन्यासी को तो लोभ, माया त्याग कर निर्विकार मन से अपना कर्तव्य पूर्ण करना चाहिए, तभी उसकी सद्गति होती है। पूर्व जन्म में तुमने बहुत बडा पुण्य संचय किया था, इसलिये तुम्हे यहाँ आने की प्रेरणा मिलि। अब मुझसे पूर्ण विश्वास रखो और कल से 'राम-विजय' ग्रन्थ का सप्ताह आरम्भ करो। परमात्मा तुम्हारा भला करेगा।''

श्री साई के इस उपदेश से विजयानंद को संतोष हुआ। श्री बाबा की आज्ञानुसार प्रात:काल उठते ही लेंडी बाग के समीप एक एकांत स्थल में स्नान-संध्या से निवृत्त हो कर विजयानंद ने 'राम-विजय' का पारायण आरम्भ किया। ग्रंथ के दो ही पारायण हुए थे कि एकाएक विजयानंद का जी घबराने लगा। तत्क्षण उठकर वह वाडे (धर्मशाला) में आया। दो दिन अन्न-जल के बिना वहीं पडा रहा और तिसरे दिन फकीर बाबा की गोद में प्राण छोड दिये।

श्री साई को विजयानंद का भविष्य पहले से ही पूर्णतया ज्ञात था। उसका अन्त-काल निकट आया जानकर ही श्री बाबा ने उसे निर्वाण पद प्राप्त करने का भक्ति-मार्ग दिखाया था। अपने भक्तों के सहयोग से श्री बाबा ने विजयानंद का संन्यास धर्म के अनुकूल ही अग्नि-संस्कार करवाया।

प्रत्येक मनुष्य के जीवन-काल में कभी-कभी एकाध ऐसा प्रसंग भी आ बनता है कि उसके के लिए जीना असम्भव हो जाता है। मन की चंचलता या उद्विग्नता से बुद्धि का सन्तुलन भी प्राय: नष्ट हो जाता है और व्यक्ति का मन तीव्रता से वैराग्य की ओर बढता है। बालाराम मानकर की भी कुछ ऐसी ही अवस्था हो गई थी। उन्होंने अपनी अत्यन्त प्रिया एवं सहृदया पत्नी के विरह से व्याकुल होकर खिन्न मन:स्थिति में घर-बार, सर्वस्व छोड शिरडी में श्री साई महाराज का आश्रय लिया। इनके जीवन को उचित दिशा देने के उद्देश्य से ही श्री बाबा ने उन्हें बारह रूपये दिये और मच्छिन्दरगढ को चले जाने की आज्ञा दे दी। मानकर पहले सहमत न हुए; परन्तु श्री बाबा ने उन्हें बडी कुशलता से अपना उद्देश समझाया और योग-साधना किस प्रकार करनी चाहिये, इसका भी उपदेश किया। श्री बाबा की आज्ञा शिरोधार्थ कर श्री मानकर मच्छिन्दरगढ पहूँचे और वहाँ ध्यान-धारणा में संलग्न हो गये। भक्तों को समाधि-स्थिती में उनके गुरू या इष्ट देवता का दर्शन होता है। परंतु मानकर को समाधि-पूर्व की जागृतावस्था में ही कुछ दिनों के पश्चात् श्री साई महाराज का प्रत्यक्ष सदेह दर्शन हुआ। श्रीसाई का दर्शन होते ही मानकर ने पूछा, ''बाबा, आपने मुझे एक निर्जन एकांत स्थल में क्यों भेज दिया?'' इस पर उत्तर देते हुए श्री बाबा ने कहा-''शिरडी में भक्तों के कोलाहल में तुम्हारा उद्विग्न मन एकाग्रता प्राप्त नही कर सकता था। इसीलिए मैने तुम्हें इस एकान्त स्थल में भेज दिया था। मेरा साढे तीन हाथ का पार्थिव शरीर केवल शिरडी में ही वास करता है, यह तुम्हारी भ्रममूलक कल्पना मात्र है, अब प्रत्यक्ष देख लो। मै सारे विश्व में व्याप्त हूँ। अब तुम स्वयं ही विचार करो और

मेरे बतलाये हुए मार्ग से योग-साधना करो।'' इतना कह कर श्री साई अदृश्य हो गए। श्री साई की आज्ञानुसार मानकर ने कुछ काल मच्छिन्दरगढ में व्यतीत किया और बाद में श्री बाबा का संकेत पाते ही मच्छिन्दरगढ छोड अपने घर की ओर चल पडे। पूना स्टेशन पर टिकट लेने वालों की बहुत बडी भीड थी। इस कारण वे एक कोने में खडे हो कर प्रतीक्षा करने लगे। इतने में केवल लंगोटी पहने हुए एक देहाती उनके पास दौडता हुआ आया और अपने लिए खरीदा दादर का टिकट उनकी ओर बढाते हुए बोला-''आपको दादर जाना है? तो आप यह मेरा टिकट लीजिये। किसी आकस्मिक कारण से मेरा दादर जाना स्थगित हो गया है।''

मानकर ने उस देहाती से टिकट लिया और टिकट के पैसे देने के लिए ज्यों ही हाथ बढाया कि वह देहाती भीड में एकाएक कही अदृश्य हो गया। गाडी रवाना होने तक मानकर ने उस व्यक्ति को बहुत खोजा; परंतु, उसका कही पता न लगा।

मानकर को यह दूसरा दृष्टान्त मिला था। इसके पश्चात् मानकर ने अपने बाल-बच्चों से अंतिम बिदा ली और वे श्री बाबा के सान्निध्य में रहने के लिए शिरडी लौट आये। उन्होंने कुछ समय बाद वही श्री बाबा की देख-रेख में जप-जाप करते हुए शान्तिपूर्वक अपने प्राण त्याग दिए और सद्गतिको प्राप्त हुए।

श्री साई महाराज को जब कभी वे लहर में आते थे, कहानियाँ सुनाने का बडा शौक था। कहानी सुनाने का उनका ढंग भी न्यारा ही होता था। उनकी कहानियाँ विनोद से भरपूर होती थी। किसी भक्त के मन में कोई बहुत ही बडा तत्व सहज ढंग से संचरित करने के लिए श्री बाबा इन कहानियों का उपयोग करते थे।कहानी के प्रमुख नायक की भूमिका में वे स्वयं अपने आप को उपस्थित किया करते थे। सुनने वालों को ऐसा आभास होता था, मानो वे अपने ही विगत जीवन के अथवा बाल्यकाल के विशिष्ट तथा रहस्यमय प्रसंग

चित्ताकर्षक शैली में सुना रहे है। श्री बाबा द्वारा सुनाई गई कुछ कहानियाँ इस प्रकार थी-

''एकदिन प्रात:काल जल-पान के पश्चात् मैं भ्रमण करने के लिए चल पडा। बहुत देर तक इधर-उधर घूमने के बाद एक नदी के तीर पर हाथ-पैर धो कर मैने स्नान किया। मैं एक घने-वृक्ष के नीचे विश्राम करने के लिए बैठा ही था कि एक मेंढक के टर्राने की आवाज सुनाई दी। मैं अपनी चिलम तैयार कर उसे सुलगाने वाला ही था। कि एक देहाती यात्री वहाँ आ पहूँचा। कुछ देर बातचीत होने के पश्चात उसने मुझसे अपनी झोपडी में पधारने ओर भोजन करने का आग्रह किया। वृक्ष के नीचे नदी से आने वाली उसी मेंढक की आर्त टर्र-टर्र सुनते ही यात्री ने भी पूछा कि दादुर इस प्रकार दु:ख से क्यों टर्रा रहा है। इस पर मैने उत्तर मे कहा-''नदी के किनारे एक मेंढक भयानक संकट में फँसा हुआ है। वह अपने पूर्व जन्म के कर्मो का फल भोग रहा है। पूर्व जन्म में जैसा कर्म किया होगा, वेसा ही फल इस जन्म में भोगना पडेगा। अब अश्रु बहाने से क्या लाभ?'' मेरा यह विलक्षण उत्तर सुन कर यात्री का समाधान न हुआ। इसलिये अपने मन्तव्य का अर्थ स्पष्ट करने के लिए मैने उससे कहा, ''वहाँ जाकर प्रत्यक्ष देखो। एक विकराल सर्प के मुख में एक मेंढक फँसा हुआ है और वह अपने प्राण बचाने के लिए आर्त स्वर से पुकार रहा है। दोनों ही बडे नीच है। पूर्व जन्म में दोनों ने ही अत्यन्त घोर एवं भयानक अपराध किय थे, और इसी कारण अब इस जन्म में भी वे अपने पापों का फल भोग रहा है।'' मेरी बात सुनने के पश्चात यात्री अपने स्थान से उठा और नदी के किनारे जाकर स्वयं अपनी आँखो से सब कुछ देख कर वह बोला-''सचमुच ही वहाँ एक भयंकर सर्प ने अपने विशाल जबडें में एक बडा मेंढक दृढता से पकड रखा है। अब मेंढक की मृत्यू निश्चित है। उसकी मरण-बेला समीप आ गई है। दया कीजिए और उसे मुक्त किजीए।'' मैने यात्री को पूर्ण आश्वासन दिय और उसे मेंढक के पास ले गया। वहाँ जाते ही उन दोनो को देख कर मैने

कहा-''अरे, वीरभद्रप्पा, यह तुम्हारा वैरी बसप्पा इतनी गन्दी मेंढक की योनि में उत्पन्न हुआ है, फिर भी पूर्व जन्म का बैर नही छोडता और स्वयं तुम अपने पूर्व कर्मो के कारण सर्प-योनि में जन्म लेकर भी अपना वैमनस्य नही त्याग रहे हो। अरे, मन में कुछ तो लज्जा अनुभव करो और आगे अच्छा जन्म प्राप्त करना चाहते हो तो मेरी आज्ञा मानो और इस मेंढक को मुक्त करो।''

''मेरे शब्द सुनते ही सर्प ने अपने मुख में दबाया हुआ मेंढक छोड दिया और शीघ्र ही नदी के जल में अदृश्य हो गया। मृत्यू की मुँह में से अचानक मुक्त हुआ वह मेंढक भी छलाँग मार कर झाडियों में अदृश्य हो गया। इसके पश्चात् मैने यांत्री को वीरभद्रप्पा और बसप्पा का जीवन-वृतान्त सुनाया। एक पूर्व जन्म मं बसप्पा और वीरभद्रप्पा ने द्रव्य-लोभ के कारण नीच और घृणास्पद कृत्य किये थे। वीरभद्रप्पा ने उन्मत होकर बसप्पा से कहा था-''मै तेरे टुकडें-टुकडे करके तुझे खा जाऊँगा।''कुछ हि दिनों के उपरान्त विरभद्रप्पा की पक्षाघात से मृत्यू हुई और उसने सर्प-योनि में जन्म पाया। बसप्पा ने भी दहशत में प्राण छोड दिए और मेंढक की योनि में जन्म लिया। पूर्व जन्मों के संस्कारो के अनुसार ही उन्हें उचित प्रायश्चित के रूप में ये योनियाँ मिली और परमेश्वर की इच्छानुसार उनकी सद्गति करने का भार मुझ पर आ पडा था। इसलिए वीरभद्रप्पा को वैसी आज्ञा देने के लिए मै बाध्य हुआ?''

श्री बाबा द्वारा सुनाया गया दुसरा प्रसंग :

''हम चारों सहपाठी जब धर्म-ग्रंथो का अध्ययन कर रहे थे तो एक दिन ब्रम्ह-ज्ञान की खोज में हम एक सधन, भयानक अरण्य की ओर चल पडे। मार्ग में हमें एक वनवासी मिला। ''अरण्य का भेद बतलाने वाला एक उत्तम पथप्रदर्शक साथ लिए बिना आप अपने उद्देश्य में सफल नही हो सकते,''विनम्रतापूर्वक यह कहते हुए उसने हमारा हमारा यथोचित अतिथी-सत्कार किया। उसकी विनम्र प्रार्थना की अवहेलना कर हम वन में घुस गए।

बहुत देर तक वन में भटकने के पश्चात हम फिर उसी स्थान पर आ गए। वह वनवासी वही खडा था। उसने पुन: कहा-''ऐसा हठ न करो। पथ-पदर्शक के बिना आप अपना मार्ग नही खोज सकते ओर भूखे रह कर कोई भी कार्य पूर्ण नही हो सकता। परमात्मा की प्रेरणा से ही हम एक-दुसरे को मिलते है। सामने आए हुए अन्न से मुख नही मोडना चाहिए। अन्न से भरा हुआ थाल सामने आना भी एक शुभ योग ही होता है। आज आप लोग मेरे गृह पर ही भोजन कर ले, और तत्पश्चात अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए वन में आगे बढ जायँ।''

''मेरे तीनों मित्रों ने यात्री का प्रस्ताव स्वीकार नही किया। वे आगे बढे। मेरी अंतरात्मा भूख और तृषा से व्याकुल हो उठी थी। मन में उस बात का यत्किंचित भी विचार न करते हुए कि यह वनवासी शुद्र है, मै वही रूक गया और प्रेम से दी हुई उसकी दाल-रोटी को मैने सहर्ष स्वीकार किया। उसी क्षण मुझे ऐसा आभास हुआ। मानो मेरा अंतर्मन दिव्य ज्ञान से दैदिप्यमान हो उठा है। मेरे गुरूदेव भी अकस्मात मेरे सम्मुख आकर खडे हो गए और सारा वृत्तान्त सुनकर उन्होंने कहा-''मेरे संग चलो। मै तुम्हें मार्ग दिखलाता हूँ। पर मुझमे अंधविश्वास रखकर ही तुम्हे अपना कार्य करना पडेगा।'' बडी प्रसन्नता के साथ मैं अपने गुरू के साथ हो लिया। एक अति भयानक सघन अरण्य में एक पुराने गहरे कुएँ के निकट पहूँचते ही मेरे गुरू ने मेरे पैर कसकर बाँध दिये ओर मुझे उस कुएँ मे उलटा टाँग दिया। चार-पाँच घंटो के पश्चात मेरे गुरूजी लौट आये और मुझे मुक्त कर उन्होंने प्रश्न किया-''क्यों, अब कैसे हो?''

''बहुत अच्छा हूँ। मै तो आनन्द-सागर में विहार कर रहा था।'' मेरे इस उत्तर से गुरूजी को अपार प्रसन्नता हुई और उसी समय से वे मुझसे पुत्रवत् स्नेह करने लगे। गुरू-कृपा से मैं ब्रम्हानंद में समाधि लगाकर बैठना भी सीख गया।

''इस ज्ञान को प्राप्त करने के अन्य मार्ग भी है, पैर पर वे सभी नितान्त झूठे एवं मुर्खतापूर्ण है। ये मार्ग बतलानेवाले शिक्षक भी स्वार्थी एवं छली होते हैं। शिष्यों से स्वार्थ साधकर वे अपने आप तो प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेते है, पर शिष्यों को एकदम कोरा रखते है। जिन गुरूओं ने स्वयं सत्य ज्ञान प्राप्त नहीं किया है, वे दूसरे को क्या शिक्षा देंगे? मेरे सद्गुरू ने मुझे अल्पकाल में ही सरल, सुगम भाषा में आध्यात्मिक ज्ञान का प्रथम पाठ दिया। अन्नमयं ब्रम्हा:। इस तत्त्व से आरंभ कर उन्होंनें प्रत्यक्ष परमेश्वर से एक रूप होने के लिए समाधि स्थिति का दु:साध्य मार्ग भी मुझे दिखा दिया। तभी मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि गुरू-कृपा के बिना सब कुछ व्यर्थ है। एक सद्गुरू ही हमें मोक्ष-प्राप्ति का सत्य मार्ग दिखा सकता है।''

श्री साई महाराज की सुनाई हुई एक अन्य कहानी इस प्रकार थी- ''जब मैं छोटा था, तब नौकरी की खोज में जहाँ-तहाँ भटकते हुए मुझे जरी-बुटे का काम सीखने का अवसर मिला। मेरे काम को देखकर मेरा स्वामी मुझसे बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसके पास अन्य कई कारगिर थे। पर उसने अपनी इच्छा से मुझे उन सबसे कई गुना अधिक वेतन दिया। उसका मुझ पर बडा स्नेह रहा। उसने मुझे एक नया अँगरखा और एक पगडी भी दी। किसी व्यक्ति ने जो भी कुछ दिया, उससे अधिक ईश्वर अवश्य देगा। परमात्मा के द्वारा प्रदान की हुई वस्तु की तुलना किसी मानव द्वारा दी हुई वस्तु से हो ही नही सकती, यह मैने भली-भाँति अनुभव किया। मेरे इस वचन का अर्थ कोई भी समझ नहीं पाता। हर एक मनुष्य मेरे पास आता है और कुछ-न-कुछ मुझ से प्राप्त करना चाहता है। परमेश्वर के पास कितना विशाल ज्ञान-भंडार है। दोनों हाथों से यदि आप लूटना चाहें तो भी आप अनेक जन्मों में उसे प्राप्त नही कर सकते। इतना अगाध तथा अपरंपार ज्ञान विश्व में भी स्थान-स्थान पर बिखरा पडा है। भगवान् की लीलाएँ और उसकी अनन्त शक्ति आपको अनुभव कराने में ही मेरी कुशलता है।''

मै कौन हूँ? यह नश्वर दे मिट्टी में मिल जाएगा। पंचप्राण वायु में घुल जाएँगे। पर बीता हुआ काल पुन: नही लौटेगा। आज मै यहाँ हूँ, कल कही अन्यत्र चला जाऊँगा। माया की श्रृंखलाओं से मै भी बद्ध हूँ। मैं अपने लिए इतना चिन्तित नही हूँ, जितना आप के लिए हूँ। इस जन्म में कुछ तो सत्कर्म करो। मेरे द्वारा, चाहे थोडा ही सही, आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करो। परमात्मा तुम्हारा भला करेगा और तुम्हें सदा सुखी रखेगा।

उन्नीसवाँ अध्याय

श्री साई महाराज का परब्रह्म-निवास

गोधूली का समय था। वन में घास चरने गए हुए पशु गोशालाओं में वापस आ गए थे। उन्हें खूँटों से बाँधा ही जाना वाला था कि एकाएक नेवासा गाँव के बालाजी पाटील के घर में नाग के घुसने से खलबली मच गई। गौंएँ जोर-जोर से रम्भाने लगी। स्त्रियाँ और बच्चे रोने लगे। बालाजी का श्री साई में पूर्ण विश्वास था। उनके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि आज किसी कारणवश श्री बाबा ही सर्प के रूप में मेरे घर पधारे है, और उन्होनें दूध से भरा एक कटोरा लाकर नागदेवता के सामने रख दिया और साथ ही हाथ जोडकर कहा-''बाबा, हम निरपराध लोगों को आप अकारण क्यों डाराते है? भक्ति-भाव से लाया हुआ दूध पी लीजिये और शांतिसे यहाँ से जाइये।'' संयोग की बात है कि जब और लोग हाथों में डंडे ले कर सर्प को मारने कि लिए तत्पर थे, तब वह भयानक नाग धीरे-धीरे आगे बढा और कटोरे में रखा हुआ दूध पीकर शांतिपूर्वक जैसे आया था। वैसे ही चला गया इसके बाद सर्प को ढूँढ निकालने का पर्याप्त प्रयत्न किया गया; परन्तु, उसका कही पता न चला।

इसी प्रकार कोईमतूर में घटी हुई घटना अधिक आश्चर्यकारक त

विश्वासनीय है। वहाँ उपस्थित लोग जब भजन में मस्त थे, तभी सहसा सभामंडप में बीचों-बीच एक सर्प प्रकट हुआ। लोगों ने नागदेवता को दूध पिलाया और फ़ल-फूल चढाकर शास्त्रानुसार उसकी पूजा की। श्री साई महाराज का चित्र भी वहाँ रखा गया। हजारों लोग पत्थर की मूर्तियाँ की भाँति स्तब्ध खडे यह चमत्कार देख रहे थे। इस घटना के समय एक छाया-चित्र भी लिया गया, जो 'साई-सुधा' के जनवरी १९४३ के अंक में प्रकाशित हुआ था।

श्री साई महाराज के एक अत्यन्त प्रिय भक्त मेघा कि मृत्यू के कुछ हि दिन बाद एक बहुत ही विस्मयजनक घटना घटी। श्री साई के सान्निध्य में देह-त्याग कर कई भक्तों ने अपना उद्धार कर लिया था। पर व्याघ्र जैसे एक हिंस्त्र प्राणी का भी श्री साई के चरणों में देह विसर्जन करना सचमूच ही अभूतपूर्व घटना थी।

एक बार तीन दरवेश अपनी कला का प्रदर्शन करने शिरडी आये। उनके साथ एक अति भयानक व्याघ्र भी था, जो लोह श्रृंखलाओं से बद्ध था। व्याघ्र रोग-ग्रस्त था और दरवेश चिन्ता में पडे हुए थे। श्री साई महाराज के आशीर्वाद से व्याघ्र रोग-मुक्त हो जाएगा और हमारी उदर-पूर्ती का साधन लेकर द्वारकामाई में पहूँचे। सब लोग यह विलक्षण घटना श्वास रोके देखते रहे। धीरे-धीरे व्याघ्र द्वारकामाई की सीढीयों तक पहुँचा। श्री बाबा के नेत्रों की दिव्य ज्योति देखकर अत्यन्त आदर से उस हिंस्त्र पशु ने अपना सर नीचे किया। केवल दो ही क्षण दोनों एक-दूसरे की ओर देखते रहे। एक एक पग सरकते हुए व्याघ्र श्री साई के निकट जाने लगा। अपनी पूँछ ऊपर उठा कर व्याघ्र ने तीन बार भूमि पर प्रहार किया और आखिरी बार एक भयानक गर्जना के साथ उसने श्री बाबा के चरणों में देह त्याग ही। इस अद्‌भुत रीति से व्याघ्र की मृत्यु देखकर दरवेश पहले तो दु:खी हो उठे। पर साधु-सन्तो के चरणों में मृत्यु पाना भी भाग्य की बात होती है। पूर्व कर्मानुसार व्याघ्र ने इस प्रकार एक

महान सन्त के चरण कमलो में मृत्यु पाकर सद्गति प्राप्त की। इस भावना से दरवेशों का हृदय प्रेमानन्द से भर आया। दरवेश ने श्री साई महाराज से प्रार्थना की कि वे स्वयं ही व्याघ्र का अन्तिम कर्म करने की व्यवस्था करें। श्री साई महाराज ने व्याघ्र को शिवजी के मन्दिर के निकट दफनाने की आज्ञा दी।

दैव-योग भी कैसा विलक्षण होता है। व्याघ्र की मृत्यु से ठीक सातवे दिन श्री साई महाराज ने भी अपने पार्थिव शरीर का त्याग किया।

श्री साई महाराज की शक्ति इतनी महान और विलक्षण थी, फिर भी वे कभी-कभी अत्यन्त विचित्र आचरण करते थे; इतना विचित्र कि उसका अर्थ समझना भी लगभग असंभव हो जाता था। जैसे कोई संकट में घिरा हुआ भक्त हठ करके भगवान के चरणों में अपना सिर फोडने के लिए उतारू हो जाता है, वैसी ही कुछ विवशता श्रीमती औरंगाबादकर नामक एक स्त्री की भी देखी गयी। उनका विवाह हुए सत्ताईस वर्ष हो चुके थे। पर, फिर भी उनके संतान होने का कोई चिन्ह दिखाई न दिया। अनेक मनौतियाँ मानने और उपवास-व्रतों के बावजूद जब उनकी मनोकामना पूर्ण न हूई तो अन्तिम उपाय के तौर पर श्रीमती औरंगाबादकर ने श्री साई महाराज के चरणों मे शरण ली। श्री बाबा के दरबार में सदैव भक्तों की भीड जमा रहती थी। श्रीमती औरंगाबादकर को मन की इच्छा व्यक्त करने का कोई अवसर नही मिला। परंतु वह श्री बाबा की सेवा चाकरी बराबर करती रही थी। अन्त में हार कर उन्होने श्री बाबा के परम भक्त माधवराव (शामा) से सहायता करने की प्रार्थना की। एक दिन यह देखकर कि श्री बाबा प्रफुल्लएवं शांत मुद्रासे द्वारकामाई में बैठे है, माधवराव ने उनसे कहा-''बाबा, यह औरंगाबादकर कितने ही दिनों से आपकी सेवा-चाकरी कर रही है। उनके आँचल में आप यह नारियल डाल दिजिए। आपके आशीर्वाद से उन्हें पुत्र-लाभ होना चाहिए।'' इस पर विनोद भरी वाणी में श्री बाबा बोल पडे-''अरे देखो, लोग भी कितने मूर्ख होते है।

नारियल से क्या कभी बच्चा भी होता है? उससे परमेश्वर की आराधना करने के लिए कहो। परमेश्वर की कृपा हुई हो उसे अवश्य इच्छित फल मिलेगा।''

माधवराव का इस उत्तर से समाधान न हुआ। उन्होने श्रीमती औरंगाबादकर को श्री बाबा से प्रसाद देने के लिए विशेष आग्रह किया। तब श्री बाबा ने प्रसन्नतापूर्वक श्रीमती औरंगाबादकर के आँचल में नारियल डाल दिया और आशीर्वाद देते हुए कहा-''आज से बारह महीनों के अन्दर अन्दर तुम्हें पुत्र-लाभ होगा।'' माधवराव ने भी हर्षपूर्वक श्रीमती औरंगाबादकर की ओर मूडकर कहा-''माई, बाबा ने अभी जो कुछ कहा है इस के लिए मै साक्षी हूँ। यदि बाबा के बताये हुए समय के अन्दर पुत्र प्राप्त न हुआ तो यही नारियल मैं बाबा के मस्तक पर फोड डालूँगा और उन्हें शिरडी से निकाल दूँगा।'' माधवराव को अपनी यह मूर्खतापूर्ण भीष्म प्रतिज्ञा पूरी करने का अवसर ही नही मिला; क्योंकि एक वर्ष के भीतर ही श्रीमती औरंगाबादकर एक नन्हें कोमल बालक को साथ लिए शिरडी आ पहूँची। बालक को उन्होनें श्री बाबा के चरणों में डाल दिया और मनौती पूरी करने के लिए उन्होने श्री बाबा के श्यामकर्ण घोडे के लिये छः सौ रूपये खर्च किये ।

श्री साई महाराज के भक्तों की संख्या दिनानुदिन बढने लगी। दिनांक १० दिसम्बर १९०९ से लोगों ने री बाबा की पूजा करने तथा जुलूस निकालने की प्रथा आरम्भ की थी। श्री साई का दरबार भरना आरम्भ हुआ। चावडी जानेवाला जूलूस अत्यन्त प्रेक्षणीय तथा उत्साहजनक ढंग से निकलने लगा। हजारों लोग द्वारकामाई में एकत्रित होते थे। हर प्रकार के वाद्यों से सम्पन्न भजन-मण्डलियाँ अति उत्साह के साथ राम-नाम का कीर्तन करते हुए श्री साई महाराज का जुलूस निकालती थी। श्यामकर्ण नामक श्री बाबा का अत्यन्त प्रिय घोडा जरी-बुटे वाली शाल तथा काठी से सुसज्जित हा जुलूस के आगे-आगे चलता था। तात्या पाटील स्वयं अपने हाथों से श्री बाबा के स्कन्ध पर जरी का उत्तरीय डाल कर उन्हें सहारा देते हुए द्वारकामाई से बाहर लाते थे और फिर बाजे-गाजे सहित, हरि नाम का उच्चार करते हुए यह जुलूस चावडी

की ओर बढता था। दशों दिशाएँ अबीर-गुलालसे भर जाती थी। मृदंग, ताल शहनाई तथा चौघडा की झंकार के मध्ये निकलने वाली श्री बाबा का यह जुलूस अत्यन्त मनोहारी होता था। नानासाहेब निमोणकर श्री बाबा के शीश पर छत्र लगाते थे। श्री बाबा की पूजा अर्चना कर उन्हें अर्घ्य देने का काम बापूसाहेब जोग को सौंप दिया गया था। चावडी में पहूँकर श्री बाबा जब सुसज्जित आसन पर बैठते थे, तो माधवराव चिलम सुलगाने की तैयारी में लगते थे। भगत म्हालसापति चिलम सुलगा कर स्वयं दो-चार कश लगाने के पश्चात् चिलम श्री बाबा को दे देते थे। श्री बाबा के हाथों से पूनीत हूई चिलमें आज श्री द्वारकामाई की एक दीवार में चूने से लिपाई करके सुरक्षित रखी हुई है। आरती समाप्त होते ही श्री बाबा सब को आशीर्वाद देते थे। प्रसाद वितरण के बाद श्री बाबा सब भक्तों को अपने-अपने निवास-स्थान पर जाने की आज्ञा देते थे। फिर श्री बाबा स्वयं अपना बिस्तर बिछा कर सो जाते थे।

कलियुग में दान का महत्त्व बहुत बताया गया है। दीन-हीनों, क्षुधातों को अन्न-दान करना, 'दान' का सर्वश्रेष्ठ प्रकार समझा जाता है। श्री साई महाराज स्वयं अपनी उदर-पूर्ति भिक्षा द्वारा प्राप्त अन्य से ही करते थे और भक्तों द्वारा अर्पित प्रसाद में से भी थोडा ग्रहण करते थे। पर और लोगो का अन्न-दान करने का उनका अभिनव प्रयोग मति कुंठित करने वाला था। एक तो वह स्वयं जाकर बाजार से सारी खाद्य-सामग्री अपने हाथों से एकत्रित कर लाते और फिर द्वारकामाई के बाहर चूल्हा सुलगाते थे। चूल्हे पर पानी से भरी हुई एक बडी हंडी रख देते थे। अपनी लहर के अनुसार मीठे चावल या पुलाव तैयार कर लेते थे और अपनी इच्छानुसार ही भिन्न-भिन्न प्रकार के मसाले हंडे मे डालकर उबलते हुए मिश्रण को हाथ हिलाते रहते थे। फिर भिन्न-भिन्न पदार्थो से तैयार की हूई उस खिचडी को स्वयं ही वहाँ उपस्थित भक्तों को पेट भर खिलाते थे। परोसने के लिए चम्मच या झारी का वे कभी प्रयोग नहीं करते थे। किसी ने भी यह नही देखा कि उनके हाथ जले या झुलसे हों। जब हंडे में खाद्य सामग्री पूर्णतया पक जाती थी तो श्री बाबा बाहर से हंडी उठाकर

द्वारकामाई में लाते थे और पके हुए अन्न का कुछ भाग अपने निकटतम भक्तों के लिए अलग रखकर शेष खाद्य वहाँ एकत्रित लोगों में बाँट देते थे। श्रीसाई महाराज के हाथ से प्रसाद प्राप्त करने के लिए भक्तों का झुण्ड का झुण्ड द्वारकामाई के सामने इकट्ठा हो जाता था। श्री बाबा के जीवन काल में शिरडी में एक भी भिकारी भूखा न रहा। आज भी शिरडी के भिखारी पैसों के लोभ से दूर रहते है और श्री बाबा के जीवन-काल में जैसी प्रथा थी, उसी के अनुसार वे केवल कुछ खाने-पीने की सामग्री ही माँगा करते है।

श्री साई महाराज जब प्रसाद वितरण करते थे, तब वर्ण-विषयक भेद-भाव नही बरता जाता था। श्री साईबाबा द्वारा तैयार की हूई खिचडी में कभी-कभी माँस के टुकडे भी डाल दिये जाते थे। ऐसे समय वे ब्राम्हणों को वह खिचडी खाने के लिये बाध्य नही किया करते थे। हाँडी का प्रसाद ग्रहण करना या न करना भक्तों की इच्छा पर ही निर्भर होता था। श्री साई बाबा का यह आग्रह कभी न रहा कि भक्तों को प्रसाद ग्रहण करना ही चाहिए। सन १९१० तक हाँडी की यह प्रथा चलती रही। बाद में भक्त लोगों की संख्या बेहिसाब बढती गई। भक्तों द्वारा अर्पण किये गये नैवेद्यों का परिणाम इतना बढ गया कि श्री बाबा को भक्तों को बाँटने के लिए हाँडी में खाद्यान्न पकाने की आवश्यकता अनुभव नही हुई और उन्होंने हाँडी का प्रसाद देना ही बिल्कुल बन्द कर दिया।

श्री साई जब स्वयं परदे के भीतर भोजन के लिए बैठते थे तो उनके साथ कुछ चुने हुए भक्त भी होते थे। अन्य भक्त अपनी-अपनी नैवेद्य की थालियाँ परदे के अन्दर सरका देते थे। सारी सामग्री एकत्रित कर श्री बाबा पहले भगवान को नैवेद्य चढाते और बाद में अपने साथ भोजन करनेवाले भक्तों को खिलाते थे। इच्छा होती थी तो स्वयं भी कुछ खा लेते थे। बचा हुआ सारा प्रसाद बाहर इकट्ठे हुए भक्तों में बाँट दिया करते थे। श्री बाबा के हाथों से जो प्रसाद बाँटा जाता था, उसका स्वाद कुछ निराला ही होता था और सभी लोग उसे बडे चाव से ग्रहण करते थे। ऐसे ही एक अवसर पर छाँछ

से भरा हुआ एक प्याला श्री बाबा ने 'श्री साई सच्चरित्र' के लेखक श्री हेमाडपंत की ओर बढाया। हेमाडपंत का पेट पहले से ही भरा हुआ था। उन्होंने केवल श्री बाबा को प्रसन्न करने के लिए एक घूँट पी लिया और चुपके से प्याला एक बगल में रख दिया। पर श्री बाबा उनकी यह चेष्टा देखने से न चूके। हेमाडपंत की ओर मुडकर वे बोले-''अरे पागल, वह सारी छाँछ पी ले। इसके पश्चात ऐसा स्वर्ण अवसर कभी प्राप्त न होगा।'' श्री बाबा के इन शब्दों का अर्थ हेमाडपंत उस समय समझ नही सके। पर श्री बाबा की आज्ञानुसार हेमाडपंत ने सारी छाँछ पीली। परन्तु, दुर्भाग्यवश श्री बाबा के हाथ का वह प्रसाद सचमुच ही अन्तिम सिद्ध हुआ; क्योंकि उसके कुछ ही समय पश्चात श्री बाबा समाधिस्थ हो गए। श्री बाबा किसी भी प्रकार का आडम्बर या प्रदर्शन न करते हुए कोई निश्चित ध्येय सामने रखकर किसी विशिष्ट कार्य को भक्तो के हाथों धीरे-धीरे पूर्ण करवा लेने की पद्धति अपनाते थे; जो सचमूच ही प्रशंसनीय होती थी। श्रीमान बूटीसाहब द्वारा निर्मित कराए गए मुरलीधर के मंदिर की कहानी कुछ ऐसी ही है। जब बूटीसाहब दीक्षित बाडे में ठहरे हुए थे तो एक रात्रि में स्वप्न में श्री बाबा ने उन्हें प्रेरणा दी, ''तुम यही इसी स्थान पर एक भव्य मंदिर बनाओ।'' संयोग से ठीक उसी समय शामा(माधवराव) को भी वही स्वप्न हुआ। प्रात:काल सोकर उठने के बाद शामा की चिन्ताग्रस्त मुद्रा देखकर बापूसाहेब ने उनसे कारण पूछा। शामा ने कहा कि कल रात्रि में श्री साई स्वप्न में प्रकट हुए थे और उन्होंने मुझसे कहा-''यहाँ धर्मशाला के स्थान पर एक भव्य मंदिर खडा करो, मै आप सब लोगों की मनोकामनाएँ पूर्ण करूंगा।'' बापूसाहेब को स्वप्न में जो आभास हुआ था, उसकी पुष्टि होने से उन्होंने दीक्षित, माधवराव आदि लोगों के परामर्श से एक मंदिर बनवाने का निश्चय कर लिया। श्री बाबा ने भी पूर्ण सहमति प्रकट कर दी। बापूसाहेब जोग मंदिर की इमारत बनवाने के काम में जुट गये। मुरलीधर की सुंदर मूर्ति के आगे सभा-मंडप बनाने की कल्पना का उदय होने से पुन: बाबा की अनुमति प्राप्त करने का प्रश्न उपस्थित हुआ। श्री साई महाराज उस समय लेंडी बाग की

ओर जा रहे थे। उन्हे वही रोककर भक्तों ने प्रश्न किया। कुछ क्षण विचारमग्न होते हुए श्री बाबा बोले-''आप अपनी इच्छानुसार मंदिर बनवाइये। मूर्ति प्रतिष्ठा की जल्दी न कीजिये। मैं स्वयं ही वहाँ वास करूँगा। मुझे वह स्थान बहुत पसंद आया है। यहीं पर सदैव निवास करते हुए आप सब बाल-गोपालों के साथ हँसते-खेलते जीवन बिताना चाहता हूँ। आज से शुभ मुहूर्त में इस मंदिर का कार्य आरम्भ करो।''

श्री बाबा की इच्छानुसार नारियल तोडकर शुभ मुहूर्त में काम आरम्भ किया गया। कुछ ही वर्षो के पश्चात मंदिर का कार्य पूर्ण हुआ। मुरलीधर की एक सुन्दर मूर्ति बनवाई गई। बापूसाहेब की हार्दिक इच्छा थी कि मूर्ति की स्थापना श्री साई महाराज के हाथो से हो जाये। परन्तु श्री बाबा की लीलाएँ तो न्यारी होती थी। ठीक उसी समय श्री बाबा रोग-ग्रस्त हुए और दिन-दिन वे अधिकाधिक अशक्त होते गये। यहाँ तक कि अन्तिम क्षणों में उन्होंने ''मुझे बूटी के मंदिर में रखा जाये,'' यह आज्ञा दी। इसी कारण इस भव्य मंदिर में ही श्री साई महाराज की समाधि बनाई गई और इस प्रकार मुरलीधर के उस पवित्र स्थान में श्रीकृष्ण के अवतार श्री साईनाथ महाराज को प्रतिष्ठा हुई ।

श्रीसाई महाराज का निर्वाणकाल समीप आया। दिनांक २७ सितम्बर, १९१८ को श्री बाबा के शरीर का तापमान कुछ बढ गया। दो-तीन तो तापमान में उतार-चढाव जारी रहा। चौथे दिन श्री बाबा ने अन्न त्याग दिया। इससे शरीर में दुर्बलता बढ गई। सत्रहवे दिन दिनांक १५ अक्तूंम्बर, १९१८ को दोपहर ढाई बजे की घडी अन्तिम क्षण सिद्ध हुई और श्री साईनाथ महाराज की आत्मा यह नश्वर देह त्यागकर परब्रह्म में लीन हो गई।

बीसवाँ अध्याय

विरहाश्रुओं की बाढ

ठीक दो वर्ष पूर्व इसी समय दशहरे के बाद के दिनों में, श्री बाबा एकाएक क्रोधित हुए थे। उन्होंने अपने शरीर के वस्त्र उतारकर कर धूनी में फेंक दिये थे और क्रोधित होकर अंगारों के समान लाल-लाल आँखो से इधर-उधर दृष्ट दौडाने

लगे थे। श्री बाबा के एक परम भक्त भागोजी ने उन्हें शांत किया और वस्त्र धारण करने के लिए विवश किया। फिर दो ही वर्षो के पश्चात दशहरे के शुभ मुहूर्त पर श्री बाबा ने शरीर पर धारण किये हुए वस्त्रों के साथ ही आपने पार्थिव शरीर का भी परित्याग कर परलोकगमन किया और मानो अपने भक्तों को यह जानने का अवसर दिया कि वे कौन है।

उसी विजयादशमी के कुछ दिन पूर्व श्री साई महाराज का परम प्रिय भक्त रामचन्द्र पाटील रोग-ग्रस्त हुआ। उसका अन्त-काल समीप था। उसने बाबाके नाम का जप आरंभ किया। तब श्री बाबा स्वयं उससे मिलने पहूँचे और सांत्वना देते हुए उन्होनें कहा-''अरे, तुम चिन्ता न करो। तुमसे मृत्यू अभी दूर है। तुम शीघ्र ही रोग-मृत्यू हो जाओगे। यमदूत की लाई हुई तुम्हारी हुण्डी मैने लौटा दी है। परन्तु, मुझे तात्या पाटील की चिन्ता है। आगामी विजयादशमी को निश्चित ही उसके लिए मृत्यू का आमंत्रण आयेगा। यह बात किसी से न कहो। व्यर्थ ही सब चिन्ता में पड जायेंगे।'' श्री बाबा के शब्द ब्रम्ह-वाक्य होते थे। रामचन्द्र पाटील सचमूच बिलकूल ठीक हो गया और घूमने-फिरने लगा। पर, अब वह तात्या के विषय में चिन्तित हो उठा। उसने किसी से भी श्री बाबा की कही हुई बात का उल्लेख नही किया था। उसने अपने परम स्नेही बाला शिंपी को ही श्री बाबा की भविष्यवाणी से परिचित कराया था। सन १९१८ में जब विजयादशमी का दिन निकट आया तो श्री साई बाबा के शब्द सत्य सिद्ध हुए। तात्या पाटील सचमुच ही रोग से पीडित हुआ। उत्तरोत्तर उसके शरीर में क्षीणता बढती गई और परिस्थिती ने उग्र रूप धारण कर लिया। सभी लोग चिन्तातुर हो उठे। तात्या पाटील अन्तिम साँस लेने लगे। नाडी का स्पंन्दन मन्द हो गया। लोगों ने देखा कि अन्तिम क्षणमें माना एकाएक बिलजी गिरी और एक भयानक दर्द भरी चीख सुनाई दी। ठीक उसी क्षण द्वारकामाई में श्री साई का प्राणोत्क्रम हुआ। श्री बाबा ने अपने भक्त के लिए स्वयं ही मृत्यू को अपनाया और तात पाटील को कुछ दिन और जीने का अवसर दिया।

काल-घटना भी कैसी विचित्र होती है? विजयादशमी के लगभग पन्द्र दिन पूर्व द्वारकामाई में झाडू-बुहारी करने वाले एक लडके के हाथ से वह ईट

जिसपर श्री बाबा सदैव सिर रखकर सोते थे, अचानक ही टूट गई। उस ईंट का महत्त्व कोई भी भक्त समझ नही सका था। पर लौटने पर जब श्री बाबा को ज्ञात हुआ कि ईंट टूट चुकी है, तो वे बहुत ही दु:खी हुए। श्री बाबा का अन्त:करण खिन्नता से भर गया और वे उदास बैठे रहे। फिर अत्यन्त उद्वेग के साथ बोले- ''केवल ईंट ही नहीं टूटी, वरन मेरा सारा जीवन चकनाचूर हो गया। वह ईंट मेरी जीवन-संगिनी थी। उसका आधार लेकर ही मै कई वर्षो तक आत्म-ज्ञान के प्रयोग और ध्यान-धारणा करता रहा। मुझे वह ईट अपने पंचप्राणों से भी अधिक प्रिय थी।'' इस प्रकार के उद्‌गारों से भी श्री बाबा ने मानो अपने भक्तों को बताया कि उनका अवतारकार्य पूर्ण हो चुका है और उनका अन्तिम-काल निकट आ गया है।

साधारणत: सभी धर्मो में प्रचलित पद्धति के अनुसार जब किसी मनुष्य का अन्तिम काल समीप होता है तो उसके निकट प्रार्थना नाम-जप या कोई धर्म-ग्रन्थ पढा जाता है। श्री साई महाराज को यह पूर्णत: ज्ञात हो चुका था कि उनका अन्तिम काल निकट आ चुका है। इसीलिये उन्होंने अन्तिम दो दिन वझे नामक एक सज्जन को 'राम-विजय' ग्रन्थ का पारायण करने की आज्ञा दी। एकबार पारायण हो जाने के पश्चात श्री बाबा ने ग्रन्थ दुबारा पढने की आज्ञा दी। इस प्रकार श्री बाबा ने तीन-चार बार 'राम-विजय' ग्रन्थ का पारायण करवाया।

केवल आखिरी तीन-चार दिन ही श्री साई महाराज ने अपना घूमना-फिरना, उठना-बैठना बन्द किया था। अन्तिम क्षण तक वे पूर्णत: सचेत रहे। पूर्ण चेतनावस्था में वे भक्तों के साथ वार्तालाप करते रहे और भक्तों को ''दु:ख शोक न करो, अपना धीरज न खो बैठो,'' इस प्रकार का उपदेश करते रहे। परिणाम यह हुआ कि किसी भी भक्त को यह कल्पना न हुई कि बहुत ही शीघ्र उनके ऊपर कोई वज्राघात होने वाला है। सदैव की भाँति श्री बाबा ने काकासाहेब दीक्षित, श्रीमान बूटीसाहेब आदि भक्तों को भोजन करने के लिए अपने-अपने घर भेज दिया। आरती-पूजा आदि सब नित्य-कर्म सदा की भाँति शांतिपूर्वक सम्पन्न हुए। निकट के सभी भक्त वहाँ उपस्थित थे। लक्ष्मीबाई शिंदे को श्री बाबा ने नौ रूपये प्रसाद-स्वरूप दिये। शामा(माधवराव) द्वारकामाई की सीढी

पर बैठे थे। श्री बाबा ने अपनी क्षीण आवाज में उनसे कहा-''मेरा जी घबरा रहा है। मुझे अब बूटी की हवेली में ले चलो।'' श्री साई के यह उद्‌गार सिद्ध हुए! बयाजी के शरीर पर उन्होंने अपना मस्तक रखा। भागोजी का ध्यान श्री बाबा की ओर था ही। उसने निमोणकरजी को बुलावा भेजा। नानासाहेब ने श्री बाबा के मुख में गंगाजल डाल दिया और तब 'देवा, देवा' के हृदय-द्रावक शब्दों से सारा वातावरण काँप उठा।

श्रीसाई महाराज के परलोकगमन का समाचार आग की तरह चारों दिशाओं में फैल गया। शिरडी ग्राम के सभी छोटे-बडे निवासी दु:ख शोक में डुबे हुए द्वारकामाई की ओर दौड पडे। आस-पास के गाँवो में रहने वाले भिन्न-भिन्न धर्मावलंबी लोग अपना काम-धंधा जैसे का तैसा छोड पागलों की भाँति द्वारकामाई की ओर दौडने लगे। सर्वत्र हाहाकार मच गया। स्त्रियों और बच्चों के करूण क्रुन्दन से मानो आकाश फटने लगा। मार्गो पर चलने वाले लोग दु:खावेश में लडखडाने लगे कुछलोग जोर-जोर छातियाँ पीट रहे थै तो कुछ दु:ख का आघात सहन न कर सकेने के कारण स्थान-स्थान पर मूर्च्छित हूए पडे थे। आसुओं की गंगा यमुना सर्वत्र बहने लगी। सारी चराचर सृष्टि जैसे काली पड गई। अपने तेज से शिरडी में तीस चालीस वर्ष तक निरन्तर चमकने वाला दीप्तियुक्त तारा टूट गया, अस्त हो गया और सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार छा गया।

श्री बाबा के लीला संवरण के कुछ ही समय पश्चात इस बात पर थोडा वाद-विवाद हुआ कि श्री बाबा का अन्तिम संस्कार किस पद्धति के अनुसार हो। कुछ लोगों की सम्मति यह थी कि द्वारकामाई के सामने जो खुला स्थान था, वहीं पर श्री साई महाराज की समाधि बनाई जाये। परन्तु अधिकांश भक्त लोग इस बात पर सहमत हो गये कि श्री बाबा कि अन्तिम इच्छानुसार बूटी की हवेली में ही उनकी समाधि बनाई जाय। अन्तिम निर्णय तक पहुँचने मे पर्याप्त समय नष्ट हुआ। अन्त में कोपरगाँव के तहसीलदार साहब ने वहाँ उपस्थित सभी भक्तों के मतों की छानबीन के उपरान्त यही निर्णय दिया कि श्री बाबा की समाधि बूटी के हवेली में ही होनी चाहिए। छत्तीस घण्टों के पश्चात बहुत ही विशाल पैमाने पर बाजे-गाजे के साथ श्री बाबा के पार्थिव शरीर का जुलूस बूटी हवेली में लाया गया

और हिंन्दू संस्कारों के अनुसार श्री साई की समाधि बना दी गई।

प्रों. नारके ने इस प्रसंग को प्रत्यक्ष अपनी आँखो से देख उसका विस्तृत वर्णन लिखा है। प्रोफेसर साहब कहते है कि-''इतनी लम्बी कालावधि के पश्चात भी श्री बाबा के शरीर में कोई बिगाड न आया और शरीर में ऐठन तो नाम-मात्र के लिए भी नही थी। उनका चेहरा बिल्कुल शांत दिखाई दे रहा था। उनके हाथ-पैर आदि सारे अवयव सुगमता से हिलाये जा सकते थे। उनके शरीर पर जो कफनी थी, वह भी बिना फाडे बडी सरलता से उतारी जा सकी।''

बुधवार को प्रात:काल श्री साई महाराज ने स्वप्न में प्रकट हो लक्ष्मणमामा आज्ञा दी थी-''चलो, जल्दी उठो। बापूसाहेब की राह न देखो। मेरा अवतार-कार्य पूर्ण हुआ। पूजा की सारी सामग्री ले कर आओ।'' लक्ष्मणमामा सचमुच ही आज्ञानुसार दौडते हुए आये और किसी की भी परवाह न करते हुए उन्होंने श्री बाबा के मृत शरीर की शास्त्रानुसार अंतिम पुजा-अर्चना की और आरती उतारी। दूसरे दिन दासगणूजी को पंढरपूर में श्री बाबा ने दर्शन देते हुए कहा-''शिरडी की द्वारकामाई ढह गई। शिरडी के दूकानदारों, पंसारियों ने मुझे बहुत तंग किया, इसीलिये मैं यह स्थान छोडकर जा रहा हूँ। अब तुरन्त ही शिरडी पहूँचो और मेरी समाधि को बकुल के फूलों का हार पहनाओ।'' ठीक उसी समय दासगणूजी को शिरडी से भी तार पहुँच चुका था। वे अपने भक्त-परिवार सहित सत्वर शिरडी पहुँचे और बाबा की आज्ञानुसार समाधि पर बकुल के फूलों का हार चढाया। दासगणूजी और उनके साथियों के भजन-किर्तन से शिरडी गूँज उठी।

इस प्रकार श्री बाबा की दिव्य शक्ति का परिचय हजारों भक्तों को प्रथम क्षण से अन्त तक बराबर मिलता रहा। श्री साई महाराज की विविध प्रकार की लीलाओं तथा मति कुंठित करने वाले चमत्कारों को देखने के पश्चात किसी भी भक्त का अन्त:करण प्रेमाश्रुओं से भर आयेगा। श्री साई एक महान सन्त थे। वे प्रत्यक्ष परमात्मा के अवतार थे। भक्ति रूपी सुलभ मार्ग से अनभिज्ञ जीवों को सन्मार्ग की ओर अग्रसर करने का प्रशंसनीय कार्य सम्पादन करने के लिए ही वे इस संसार में आये थे। किसी भी भक्त के मन में इस सम्बन्ध में संदेह उत्पन्न होने का कोई कारण नही दीखता। अन्य सन्तों के मार्ग से श्री साई का मार्ग भिन्न

था। परन्तु, परिणाम की दृष्टि से उनका अपनाया हुआ मार्ग सर्वथा उचित तथा सांसारिक लोगों के लिए भी सुगम था। भक्तों को उपदेश देते हुए श्री साई महाराज कहा करते थे-''जो मुझे निरपेक्ष भाव से तथा सच्चा लगन से प्रेम करेगा, वही मेरे सत्य तथा शुद्ध स्वरूप को पहचान सकेगा। मेरे बिना सारा संसार उसे शून्यवत प्रतीत होगा। जो व्यक्ति अपने सब मनोविकार का मुझ में होम कर देगा, उसे मै केवल इसी जन्म में नही, वरन् जन्म-जन्म में भी कभी निराधार नही छोडूँगा। मैं दयाधन परमेश्वर के प्रति अपनी शक्ति व्यय कर अपने भक्तों के उपकारों का ऋण चुकाऊँगा।''

श्री साई महाराज का आत्म-विश्वास अटूट था। अपने भक्तों के लिए उन्होंने अपने प्राणों की भी परवाह नहीं की। इतनी महान योग्यता के युग-पुरूष यदाकदा ही जन्म लेते है। हमारी भारतभुमि का बडा भाग्य है, इसलिए यहाँ के लोगों को श्री साई जैसे सत्पुरूषों का अमूल्य सत्संग मिलता है और ऐसे सत्पुरूषों के दिखाये हुए भक्ति-मार्ग को अंगीकार कर हमें स्वयं भी अपनी आत्मिक उन्नति करने का स्वर्ण-अवसर प्राप्त होता है।

इक्कीसवाँ अध्याय

श्री साई की बोधामृत-पूर्ण सूक्तियाँ

श्री साई महाराज की जीवन-चित्र आँखो के सामने लाने से ही भक्तों का अन्त:करण प्रेमानन्द से भर आता है। श्रीसाई की लीलाओं का पठन-पाठन कर भक्त लोग गद्‌गद् हो उठते है। जिन भाग्यशाली भक्तों ने उनके साथ प्रत्यक्ष संबंध स्थापित कर लिया था। उनके पूर्व जन्मों के पुण्य सचमुच ही महान और श्लाघ्य थे; क्योंकि श्री साई जैसे दिव्य सत्पुरूष के चरण-कमलों में अपना मस्तक नत कर उनके आशीर्वाद से पावन होने का परम सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ था। संतो के चरणों में लीन होने पर सच्चा जिज्ञासु अपने मन के अहंकार, राग, द्वेष, वैर इत्यादि दोष शनै:शनै: नष्ट कर अपने मन तथा देह को शुद्ध कर ब्रम्हानन्द की और एक -एक सीढी कर अग्रसर होता जाता है।

श्री साई महाराज ने अपने हजारों भक्तों को यही कार्य सम्पादन करने के लिए सदैव प्रेरित किया और उन्हें सच्चे भक्ति मार्ग की ओर प्रवृत्त किया। ''मनुष्य देह क्षणभंगुर है। अथाह जल में हिलकोरे खाते हुए बहने वाले एक लकडी के तख्ते की भाँति हम भी संसार के प्रवाह में बहते जा रहे है। तकदीर से कुछ जीवों की एक-दूसरे से भेट होती है। वे एक दूसरे को प्रेम रज्जुओं से बाँधते है, और तदनन्तर ईश्वरीय प्रेरणा से एवं अपने प्रारब्ध के कारण ही लहर के एक झटके के साथ एक दूसरे से दूर हो कर नष्ट हो जाते है।'' इस सत्य परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए श्री साई जैसे अलौकिक सत्पुरूष द्वारा प्रसारित दिव्य ज्ञान के प्रकाश में हमें मनुष्य-जन्म को सार्थक करना चाहिए। अन्त तक श्री साई महाराज यही उपदेश करते रहे। वे अनी धीरगंभीर; पर उतनी ही ममतापूर्ण वाणी में भक्त के हृदय में प्रवेश कर उसके कानों मे यही मंत्र कहते थे की-''अरे, पागल! परमात्मा तेरा मालिक है। उसको पहचान। स्वेच्छा से अपनाये हुए भक्ति-मार्ग से उसकी उपासना कर। तुझ में जो अहंकार बसा है। उसे समूल नष्ट कर, ताकि तेरा वायु के झोंके खाने वाली शाखा की तरह चंचल मन स्थिर हो सके। तुझे शांति मिलेगी और तेरे हाथों से ही तेरा मनुष्य जन्म सार्थक होगा।''

जब तक श्री साई महाराज का शिरडी में वास रहा, तब तक वहाँ आने वाले हजारों भक्तों को उनकी दिव्य शक्ति का अनुभव प्रत्येक क्षण होता रहा। व्यवहार में पद-पद पर हमारे हाथों से जान-बूझ कर या अज्ञावश कितनी ही भूले हो जाया करती है। प्रारब्ध का भोग तो हर एक को भोगना पडता है। संकटो एवं दु:ख-क्लेशों से त्रस्त हुए व्यक्तियों का उचित मार्ग-दर्शन करने वाला पथ-प्रदर्शक श्री साई के रूपमे शिरडी वास कर रहा था और हजारों भक्तों ने उस समय इस अवसर से पर्याप्त लाभ उठाया था। आज भी उनके पार्थिव शरीर के पंचभूत में मिल जाने के पश्चात शिरडी में लोगों के झुण्ड के झुण्ड आ रहे है। इसका कारण केवल यही हे कि यद्यपि श्री साई महाराज को अपने पार्थिव शरीर को त्यागे हुए अनेक वर्ष हो चुके है, फिर भी उनकी अजर-अमर आत्मा उस पवित्र स्थान में आज इस क्षण तक भी विदेहावस्था मे वास कर रहें है। इस कथन

के सत्यता के लिए हजारों भक्तों की स्मृतियों एवं उन्हें पद-पद पर प्राप्त होने वाले साक्षात्कार के अनुभव पूर्णतया साक्षी है।

अन्य सभी क्षेत्रों की अपेक्षा शिरडी का स्थान अत्यन्त रम्य आल्हादकारक एवं मन में पवित्र, शुद्ध संस्कार उत्पन्न करने वाला है, इसका कारण यही है कि यहाँ आकर श्री साई समाधि पर विनम्र भाव से अपना मस्तक नत करने से सच्चे भावूक भक्त के अंतरंग में निर्मल, पवित्र भावनाओं का सहज स्फुरण होता है। उसका हृदय प्रेम से भर आता है तथा मन में सच्चा आनन्द अनुभव होने लगता है।

द्वारकामाई में प्रवेश करते ही वहाँ श्री साई की अत्यन्त मनोहारी प्रतिमा देखकर भक्त को प्रत्यक्ष श्री साई महाराज के ही अपने सम्मुख बैठने का अभास होता है। उनके दिर्घकालीन वास की साक्षी देने वाली उनके करस्पर्श से पुनीत हूई प्रत्येक वस्तु, जो वहाँ सुरक्षित रूप में रखी हुई है। आज भी सजीव दिखाई देती है। श्री साई की प्रज्वलित की हुई धूनी भी इस क्षण तक अखंड रूप से प्रज्वलित रखकर संस्थान ने भक्तों पर सचमुच ही अनंत उपकार किया है। इस धुनी की अग्नि एवं उस की ऊदी के पीछे नितान्त रम्य इतिहास, परम्परा तथा सात्विक, धार्मिक संस्कृति है। ऊदी के द्वारा श्री साई महाराज ने अनेक भक्तों की मनोकामनाएँ पूर्ण की थी और उनके दु:खो का निवारण कीया था। श्री बाबा के पवित्र कर-स्पर्श से पुनीत हुई यह ऊदी आज भी हजारों भक्तों के लिए स्वर्ण-भस्म से भी अधिक मूल्यवान सिद्ध होती रही है। कारण यह ऊदी इतनी प्रभावोत्पादक है कि केवल उसके स्पर्श या सेवन मात्र से अमृत संजीवनी भाँति कार्य सिद्ध हो जाते है। भक्तों का यह निजी अनुभव है। श्री साई के चरणोंमे भक्त की जितनी अविचल श्रद्धा होगी, उसी मात्रा में यह ऊदी प्रभावपूर्ण सिद्ध होती है। ऐसे प्रमाण बराबर मिलते रहते है।

एक समय था कि शिरडी एक अत्यन्त साधारण पिछडा हुआ गाँव था। वहाँ के निवासी भोले-भाले किसान थे और वे अधिकतर गन्ने की खेती

करने वाले अशिक्षित; पर अत्यन्त सहृदय लोग थे। श्री साई महाराज ने इस देहातका कायाकल्प किया। संतो के हाथों में मिट्टी को सोना बनाने का कितना सामर्थ्य होता है, यह आज इस क्षेत्र का भव्य रूप देखकर किसी भी भक्त के ध्यान में आ सकता है। आज तो शिरडी भारत-भुमि के पवित्र तीर्थो में से एक अत्यन्त पवित्र तीर्थ माना जाता है। श्री साई महाराज ने इस स्थान पर वास कर वहाँ के लोगों में और वहाँ आने वाले भक्तों के हृदयों में भक्ति एवं ईशोपासना का जो बीज बोया था, उसी के उसी ने आज कालान्तर में भव्य वृक्ष का रूप धारण कर लेने का दिव्य चमत्कार हमे शिरडी में प्रत्यक्ष दिखाई देता है। छोटे से शिरडी ग्राम का आज एक संस्थान में परिवर्तन हो चुका है। जादू के डण्डे से बदले हुए किसी दृश्य की भाँति वहाँ का बदला हुआ भव्य दृश्य देख कर कोई भी भक्त श्री बाबा के प्रति स्वाभाविक प्रेम एवं आदर प्रकट किये बिना रह नहीं सकता।

महाराष्ट्र में कितने ही सन्त समय-समय पर अवतीर्ण हुए और अपने अपने काल में उन्होने समाज की बिगडी हुई अवस्था सुधारने का स्तुत्य प्रयत्न किया तथा धर्म की अधोगति सँवारने का कार्य कर अपना अवतार-कार्य पूर्ण किया। इन सभी संतों में श्री साई की योग्यता श्रेष्ठ कही जानी चाहिए; क्योंकि उन्होंने केवल एक हिन्दु धर्म को प्रोत्साहन देकर हिन्दु भक्तों को ही भक्तीमार्ग का पाठ नही सिखाया, वरन् अपनी दिव्या वाणी से सभी धर्मो के लोगो को उनके अपने धर्म-तत्त्वों का एकीकरण कर ''मानव-धर्म सर्वत्र समान है, परमात्मा-अल्ला सब का मालिक है, प्रत्येक मनुष्य को बंधुत्व-भाव एवं प्रेम से बर्ताव करना चाहिए'' इस प्रकार ही उदात्त विश्व-बंधुत्त्व की शिक्षा दी। श्री साई महाराज का व्यक्तित्व इतना प्रभावपूर्ण एवं तेजस्वी था कि उनके जीवन-काल में शिरडी में धर्म को लेकर भूल से भी कभी कोई वाद-विवाद या उत्तेजना नही फैली। सारा भारत वर्ष हिन्दू-मुसलमान के झगडों से उपद्रवग्रस्त हुआ और भारत-भुमि के टुकडे होने में ही उन उपद्रवों

का भीषण पर्यवसान हुआ; परन्तु, फिर भी उस भयंकर तुफान से शिरडी गाँव सर्वथा बचा रहा। प्रत्यक्ष शिरडी में हिन्दु-मुसलमान भाई-चारे के साथ रहते रहे। मुसलमानों की श्री साई में ऐसी ही श्रद्धा थी जैसी कि हिन्दुओं कि। अन्य धर्मावलम्बी लोग भी श्री साई महाराज को एक महान सत्पुरूष मानते हुए उनके चरणो मे अपने शीश नत करते थे। तात्पर्य यह है कि श्री साई महाराज में तो समस्त चराचर सृष्टि के निर्माता जैसी अगम्य दिव्य शक्ति थी।

श्री साई महाराज के जीवन चरित्र में जिज्ञासु भक्त को अष्टकोण वाले हीरे की भाँति अगणित चमत्कार तथा बोधामृत से ओत -प्रोत वचन दृष्टिगत होंगे, कोई भी भक्त निर्मल अन्त:करण से श्री साई मे निजी श्रद्धा दृढ कर सकता है। श्री साई ने समय-समय पर प्रसंगानुसार जो बोध-वाक्य कहे है, उनका सतत मनन करते रहने से उसे आध्यात्मिक उन्नति का लाभ भी प्राप्त हो सकता है।

श्री साई महाराज के अत्यन्त अमूल्य वचनों में से जो ग्यारह वचन विशेष महत्त्वपूर्ण एवं मनन के योग्य है, वे इस प्रकार है;

जो शिरडी में आएगा।
आपाद् दूर भगाएगा ॥१॥

''शिरडी में जो पैर रखेगा, उसकी समस्त आपदाये दूर हो जायेंगी।''

श्री साई ने इस प्रथम वचन के द्वारा मानो अपने भक्तों पर वरद-हस्त ही रखा है। श्री साई का यह आशीर्वाद ही है। भक्त शिरडी जाकर श्री साई की समाधि के सम्मुख अपना मस्तक नत करेगा तथा अनन्य भाव से उनकी शरण में जायेगा तो उसकी सारी विपदाये दूर कर उसे सुख-शांति प्राप्त कराने का सम्पूर्ण उत्तरदायित्त्व श्री साई उठायेंगे। श्रीसाई की स्वर्गस्थ आत्मा अब भी शिरडी वास कर रही है और इसी कारण श्री बाबा ने इस अधिकारपूर्ण वाणी से यह वचन देकर भक्त को पूर्ण आश्वासन दिया है।

दुसरा वचन देखिए :-

चढे समाधि की सीढी पर।
पैर तले दु:ख की पीढी कर ॥२॥

''जो मेरी समाधि की सीढी चढेगा, उसका सारा दु:ख नष्ट हो जाएगा।''

महान दु:ख से ग्रस्त हुए मनुष्य के लिए जीना भी असम्भव हो जाता है। कोई शारीरिक व्याधि से पीडित होता है, तो कोई मानसिक व्याधि से हताश हो बैठता है। ऐसी त्रस्त मन:स्थिती में केवल धन अथवा स्वजन-सम्बन्धियों को सहानुभूतिपूर्ण शब्द उसके दु:ख का निवारण नही कर सकते। ऐसे समय में श्री साई जैसे सद्गुरू का यह वचन उसके दु:ख से पिडित अन्त:करण के लिए आशा की किरण सिद्ध हो तो कोई आश्चर्य नही। श्रीसाई महाराज के समाधि दर्शन से दु:खो का हरण होता है। यह हजारों भक्त आज भी अनुभव कर रहे है और इसीलिए असंख्य लोग शिरडी की तीर्थ-यात्रा कर रहे है। श्री साई के वचन की सत्यता का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है।

श्री सद्गुरू साईनाथ का तीसरा वचन तो भक्त को प्राप्त हुआ एक बहुमुल्य रत्नही है।

त्याग शरीर चला जाऊँगा।
भक्त-हेतु दौडा आऊँगा ॥३॥

''शरीर त्यागने के पश्चात भी मै अपने भक्तों के लिए दौडता हुआ आऊँगा।''

''श्री साई तो समाधिस्थ हुए। वे अपनी नश्वर देह त्याग कर हम से दूर हो गए। अब हमारी पुकार कौन सुनेगा? शिरडी में हमारा आधार-स्तम्भ ढह गया,''आदि निराशाजनक उद्गार निकालने का भक्त को कोई कारण नही है; क्योंकि प्रत्यक्ष श्रीसाई के मुख से यह वचन निकला है और वह त्रिकाल में भी असत्य सिद्ध नही होगा। श्री साई महाराज ने पूर्णतया स्पष्ट शब्दों में भक्तों को आश्वासन दिया है। वे कहते है-''यद्यपि मैं इस शरीर को त्याग कर चला जाऊँगा तो भी भक्त लोग कोई भी विकल्प अपने मन में न

लाये। मैं अपने भक्तों का आर्त स्वर सुनकर उनका दु:ख निवारण करने के लिए दौडते हुए आऊँगा।''

अब चौथा वचन देखिए :-

मन में रखना दृढ विश्वास।
करे समाधि पूरी आस ॥४॥

''आप मन में दृढ विश्वास रखिए, शिरडी में बनी मेरी समाधि आपकी इच्छाएँ पूर्ण करेगी।''

श्री साई की समाधि किसी सामान्य मनुष्य की पत्थर-ईंटो से निर्मित समाधि अथवा कब्र नही। वरन एक महान दिव्य पुरूष की जीती-जागती समाधि है। श्री साई का दिव्य आत्मा उस समाधि के इर्द-गिर्द निरन्तर वास कर रही है। ''मेरी समाधि में से भी मेरी अस्थियाँ आपके कानों में निनाद करेंगी,'' ये श्री साई के अन्तिम उद्‌गार थे। यदि कोई भक्त इन शब्दों की सत्यता देखना चाहता है तो उसे दृढ श्रद्धा के साथ श्री साई की आत्मा का ध्यान करना चाहिए। सामान्यत: मनुष्य दु:खावेग में किसी का उद्रेक न हुआ हो तो क्या उसे फल प्राप्ति होगी? नही ! इसी प्रकार श्री साई में भक्त की यदि अन्य श्रद्धा एवं दृढ भक्ति हो, तब ही श्री साई की समाधि उसकी मनोकामना पूर्ण करने में सिद्ध होगी। इसी कारण श्रीसाई आगे कहते है:-

मुझे सदा जीवित ही जानो।
अनुभव करो सत्य पहचानो ॥५॥

''आप मुझे सदैव जीवित ही समझिए और अपने अनुभवों द्वारा इसकी प्रचिती प्राप्त कीजिए।''

श्रीसाई के इस पाँचवे वचन में बहुत गूढ अर्थ भरा हुआ है। आत्मा अविनाशी है। जीर्ण वस्त्र फेंककर हम नूतन वस्त्र धारण करते है। इसी तहर हमारी आत्मा एक देह त्यागकर दूसरी देह में प्रवेश करती है। इस गूढ अर्थ से यही ध्वनित होता है कि यद्यपि श्री साई ने देह-त्याग किया है; पर उनकी

दिव्य आत्मा अजरामर है। उसका मरण नही है। वह जीवित है। यदि भक्त ने यह सत्य तत्व अपने मन मैं पूर्णत: धारण किया तो उसे निजी अनुभव की प्रत्येक क्षण प्रतीत मिलेगी तथा श्री साई के इस वचन का गहन अर्थ ज्ञात हो जायेगा। श्री साई महाराज मेरी प्रत्येक भली-बुरी चेष्टा की ओर देख रहे है, यह भावना मन में उत्पन्न होने पर भक्त के हाथों से कभी भूलकर भी अपवित्र कृत्य नहीं होगा।

श्री साई महाराज का आत्म-विश्वास कितना सुदृढ है। यह उनके छठे वचन से सिद्ध होता है। श्रीसाई अडिंग आत्मविश्वास के साथ मानो सारे जगत को चुनौती दे रहे है कि:-

मेरी शरण आ खाली जाये।
हो कोई तो मुझे बताये ॥६॥

''क्या ऐसा एक भी उदाहरण है कि कोई भक्त अनन्य भाव से मेरी शरण में आये और उसकी मनोकामना पूर्ण न हो?''

ऐसा एक भी भक्त न होगा, जो अनन्य भाव से श्री साई की शरण में गया हो और उसका सारा परिश्रम निष्फल हुआ हो। शरण आये हुए भक्तों को श्री साई ने कभी भी झिडकारा नही। उनके क्रोध में कहे हुए अपशब्दों में भी भक्त का कल्याण करने का आश्चर्यजनक सामर्थ्य होता था। उनके कहे हुए अपशब्द भक्त के हृदय पर किये गए आघात नही थे। वरन् उसकी सर्वांग उन्नति कराने के अभिप्राय से मानों शिक्षक के मारे हुए बेंत ही थे। बेंत की मार बालक के लिए दु:खदायक तो होती है। पर परिणाम की दृष्टि से वह हितकारक ही सिद्ध होती है तथा उससे उस बालक की मानसिक उन्नति होती है। श्रीसाई की लीलाएँ एकदम अगम्य थी। उनकी प्रत्येक कृति का अर्थ समझना कठिन था। फिर भी यह नितांत सत्य है कि श्री साई की शरण में आये हुए प्रत्येक भक्त को अभयदान मिलता था।

श्री साई महाराज का व्यवहार सभी भक्तों के सभी एक समान ही

होता था। इसका कारण उनके निम्नलिखित वचन में मिल सकता है :-

जैसा भाव रहा जिस जन का।
वैसा रूप हुआ मेरे मन का ॥७॥

''जो-जो भक्त जिस जिस भाव से मुझे स्मरण करता है, वैसा ही फल मैं उसे प्राप्त करा देता हूँ।''(श्री साई का यह कथन गीता में भगवान श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा-ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम (४।११) से कितना मिलता है।)

भक्त की श्री साई के प्रति जितनी तीव्र भावना होगी, उतनी ही शीघ्रता से वह श्री साई का प्रेम प्राप्त कर सकता है। अनेक भक्त तो केवल अपना मनोरंजन करने के उद्देश्य से ही साई के दर्शन के लिए आते थे। उनका उद्देश्य स्पष्ट ही निराला होता था। ऐसे लोग श्री साई महाराज से क्या लाभ उठा सकते थे ? परन्तु, श्रद्धालु रखते थे और इसीलिये श्रीसाई का ऐसे भक्तों पर सदा वरद-हस्त रहता था। इतना ही नही, ऐसे भक्तों का सारा भार श्रीसाई अपने कंधो पर लेते थे।

अपने आठवे वचन में उन्होंने स्पष्ट ही कहा है:-

भार तुम्हारा मुझ पर होगा।
वचन न मेरा झूठा होगा ॥८॥

''आपके हित-साधन का उत्तरदायित्त्व तो सदैव मैं सँभालूँगा। मेरा वचन कभी असत्य सिद्ध नही होगा।''

श्रीसाई अपने प्रति अटूट निष्ठा रखने वाले भक्तों का उत्तरदायित्त्व स्वयं उठाते थे। उन्होंने उदार अन्त:करण से सैकडों भक्तों के सांसारिक क्लेश दूर किए। उन्हें अनमोंल सहायता प्रदान की। अनेक भक्तों के बाल-बच्चो का भरण-पोषण वे अपने खर्च से करते रहे। अंधे-लुले, दीन-दुर्बल लोगों के वे अन्नदाता थे। शिरडी में कुछ भक्त लगातार महीनों अपने बाल-बच्चे सहित नि:शंक मन से निवास करते थे। उन्हें किसी बात का चिन्ता नही करना पडती थी; क्योंकि जब एक बार भक्त श्री साई के चरणों में शरण लेता

था तो श्री साई उस भक्त का सारा बोझ अपने कंधो पर लाद लेते थे तथा उस भक्त को वे किसी भी वस्तु की कमी अनुभव नहीं होने देते थे। इसीलिये नवें वचन में श्री साई कहते है:-

आ सहायता लो भरपूर।
जो माँगा वह नही है दूर॥९॥

''आप विश्वास रखिये कि यहाँ जो आयेगा, उसे अवश्य सहायता मिलेगी। भक्त जिस-जिस वस्तु की कामना करेगा, वही मैं उसे प्राप्त करा दूँगा।''

अपने भक्तों पर श्री साई पुत्रवत् स्नेह रखते थे। बच्चों के साथ वे बहुत ही लाड-प्यार से व्यवहार करते थे। कितने ही भाग्यवान बच्चों को उन्होंने अपनी गोद में खिलाया था। श्री साई सभी भक्तों के लिए एकमात्र विश्वसनीय आशा-स्त्रोत थे। कोई भी अच्छा भाव मन में रखकर श्रीसाई के दर्शन के लिए जाने वाले भक्त की मनोकामना की अवश्य पूर्ति हो जाया करती थी। श्री साई के इस वचन में भक्तों को यही ढाँढस दिया गया है कि श्री साई भक्त की हर प्रकार से सहायता करने के लिए सदैव तत्पर है। एक कल्पवृक्ष की भाँति भक्त की समस्त मनोकामनाएँ श्री साई की कृपासे फलीभूत होती थी। परंतु, हर कोई भक्त श्री साई की इतनी कृपा का पात्र नही होता था। इसके लिए भक्त को भी उतनी ही योग्यता होनी आवश्यक था। और इसीलिए श्री साई ने अपने दसवें वचन में कहा है:-

मुझ में लीन वचन मन काया।
उसका ऋण न कभी चुकाया॥१०॥

''जो भक्त मन, वचन, काया से मुझ में लीन होता है, उसका मै सदैव ऋणी रहूँगा।''

जो भक्त तन, वचन तथा मन से श्री साई से एक रूप हो जाता हो, जिसने अपना सर्वस्व श्री साई चरणों में अर्पण किया हो। उसके तो श्री साई

सदैव ऋणी रहते थे। ऐसे भक्तों के लिए वे सदा चिन्तित रहते थे। इन निष्ठावान भक्तों को अपने प्रति-प्रेम श्रद्धा व्यक्त करते हुए देखकर श्री बाबा उनका उद्धार करने तथा उनहे सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करने की दृष्टि से आत्म-ज्ञान सुलभ कराने वाले ग्रंथो का पाठ एवं अध्ययन करने की प्रेरणा देते थे। श्री साई अनन्य भक्तों के मन में अध्यात्म-ज्ञान के प्रति रूचि उत्पन्न करना ही अपना पवित्र कर्तव्य समझते थे। इस भावना से प्रेरित हो श्री साई अपने भक्त का शिष्यत्व भी स्वीकार करते थे। तथा अपने को उसके ऋण से मुक्त करने के लिए अहर्निश प्रयत्नशील रहते थे। ऐसे श्रद्धालु भक्तों को श्री साई ने अपने ग्यारहवे वचन में आशिर्वाद दिया है। जो प्रत्येक जिज्ञासु भक्त के लिए मनन करने योग्य है। श्री साई अन्त में कहते हैं:-

धन्य धन्य वह भक्त अनन्य।
मेरी शरण तज जिसे न अन्य ॥११॥

''धन्य है वह भक्त, जो अनन्य भाव से मेरे चरणों को शरण पाने आया हो।''

मनुष्य जन्म लेकर प्रत्येक मानव को यही कर्तव्य पूर्ण करना चाहिए। अनन्य भाव से सद्गुरू के चरणों में शरण लेकर उनके द्वारा परमेश्वर के विशुद्ध रूप से परिचित होना चाहिये। सन्त ईश्वर के ही अवतार होते है। नर को नारायण करने का सामर्थ्य उनमें होता है। जो भक्त श्री साई के चरणों में लीन हुआ हो, अनन्य भाव से उनकी शरण में गया हो, उसे साई का अंतिम आशीर्वाद यही है कि उसका जीवन सार्थक होगा और वही भक्त 'धन्य' कहलाने योग्य सिद्ध होगा।

श्री सद्गुरू साई महाराज के ये ग्यारह वचन मानो उनके सारे जीवन-चरित्र का सार है। मौक्तिक मणियों की भाँति ये वचन समय-समय पर अपने भक्तों केसाथ हुए संभाषणों में श्री साई ने स्वयं कहे है। उनके मुख से निकला हुआ कोई भी शब्द कभी भी असत्य सिद्ध नही हुआ। उन्हें वाक्सिद्धि प्राप्त

थी और इसीलिए उनके मुख से निकला हुआ प्रत्येक शब्द अत्यन्त प्रभावपूर्ण होता था। श्री साई के मुखसे निकले हुए ये वचन कितने अनमोल है, यह उनके भक्तों को अधिक विस्तार के साथ बताने की आवश्यकता नही है। श्री साई महाराज जैसे महान सन्त के अवतार-कार्य में मानवीय बुद्धि के लिए अगम्य, अगाध शक्ति का सर्वत्र परिचय और उल्लेख मिलता है। उनके दिखाये हुए अद्‌भुत चमत्कारों का गूढ अर्थ भक्त समझ नही पाते; क्योंकि उनकी योग्यता उतनी नही है।

अन्त मे, हृषीकेश केस्वामी श्री शिवानन्द जी द्वारा लिखित 'मेडिटेशन एँड फिलासफी' पुस्तक की प्रस्तावना में सन्तों के विषय में व्यक्त उद्‌गारों की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट कर श्री सद्‌गुरू साईनाथ का यह चरित्र-गायन पूर्ण किया जाता है। सन्तों के सम्बन्ध में स्वामी जी कहते है:-

''ये सब महान सन्त स्वार्थ की भावना से सर्वथा अलिप्त रहते थे। कभी किसी समय उनके मन में यह भावना उत्पन्न होती थी कि प्राणियों का कल्याण हो, और उनकी इस उदात्त भावना के अनुसार सब कुछ हो भी जाया करता था।''

जिस महान विभूति ने मानवों पर इतने अनन्त उपकार किये हो, अनन्य भाव से उन श्री सद्‌गुरू साई नाथ की शरण में जाकर मैं अपनी लेखनी को विश्राम देता हूँ।

॥ ॐ श्री साई यश:काय शिरडीवासिने नम: ॥

॥ इति ॥